भूमिका.

ब्रजभाषाके साहित्यमें कविवर विहारीलालकी सतसईभी अपने ढंगका एक अनूठा ग्रंथ है, ऐसा कौन भाषाका रसिक है जिसको इस सतसईके दो चार दोहे स्मरण न हों, यह ग्रन्थ जैसा सरस और मनोरम है वैसाही क्लिष्टभी है इसको निर्मित हुए अभी पूरे २५० वर्ष भी नहीं हुए हैं, कि, इतनेही समयमें इसपर वीस पच्चीस प्रसिद्ध टीके होचुके हैं।

सूरतमिश्र, कृष्णचंद्र, गोपाल, अनवरखां जुल्फिकारखाँ यूसुफखां, करण, रघुनाथ, लालसरदार, गंगाधर, रामवक्स, परमानन्द, जोखूरामकी कुण्डली, श्रीसाहित्याचार्यकी कुण्डली, लल्लू लालादिके बनाये टीकोंसे सतसई अपूर्व छबि धारण करचुकी है, परन्तु इन टीकोंमें पद्यरचना विशेष और गद्यरचना न्यून होनेसे कठिनपर कठिनाई पड़नेसे वे सर्वसाधारणके उपयोगी नहीं हुए हैं, और इसीकारण अतिरसीली होनेसे भी सतसई घर घर नहीं विराजती है, सर्वसाधारणकी बुद्धिमें कविवरका आशय प्रगट होजाय इसी निमित्त सर्वसाधारणके उपयोगी भावार्थप्रकाशिकाटीका निर्माणकर साथमें कठिन शब्दोंके अर्थ अलंकारादि लक्षण पर और स्वनिर्मित दोहोंमें लिखकर पुनरुक्तिसे उसका विस्तार नहीं किया है, और विभाव अनुभावादिका उल्लेखमात्र करके उसके समझनेके निमित्त 'साहित्य परिचय' नामका एक पृथक् प्रबन्ध लिखा है, भावार्थ और अक्षरार्थ बहुत सरलहो इसपर विशेष दृष्टि रक्खी है और कौनसा दोहा कहाँ है इसकी खोज करनेमें परिश्रम न पडे इस कारण सतसईके दोहोंकी अकारादिक्रमसे सूची भी लिखी

है, "साहित्य परिचयसे काव्यलक्षण रसनिरूपण नायिका-भेद अलंकारादिका ज्ञान पाठकोंको सहजमें होजायगा" और इससमयकी परिपाटीके अनुसार यथामिलित विहारीदासका जीवनचरित्र भी लिखदिया है।

टीका करते समय हमने कई सतसई सन्मुख रक्खीं परन्तु एकका क्रम एकसे नहीं मिलता, तथा पाठभेदभी बहुत है इस कठिनाईके दूर करनेके निमित्त आज़मसाही संग्रहके अनुरूपलल्लूजीलाल संग्रहीत दोहोंका अनुसरण करके इस टीकेको निर्माण किया है।

विहारीलालकी सतसई क्रमसे निर्मित नहीं हुई, यह एक भिन्न क्रमका ग्रंथ है। इसीकारण इसमें नायिकाभेदादिका क्रम अन्यग्रंथोंके अनुसार नहीं है और यही कारण है कि, दोहोंका एक दूसरेसे अधिक सम्बन्ध नहीं मिलता।

जितने प्राचीन टीकेहैं उन टीकोंमें साहित्यविषयक कोई त्रुटि नहीं है बहुत उपयोगी है परन्तु भावार्थ अक्षरार्थ जाननेके लिये पाठकोंको यह अतिउपयोगी होगा ऐसी मुझे दृढ आशा है।

इसप्रकार प्रबन्धोंसे इस ग्रंथको अलंकृत कर अपने परम माननीय जगद्विख्यात वैश्यवंशदिवाकर "वेंकटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुतखेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयके करकमलमें सब प्रकारके सत्वसहित समर्पित करदिया है; जिन्होंने सबप्रकार कृतकार्य कर हमको सदैव उत्साहित कियाहै।

यथासाध्य दोहोंको शुद्ध कर सन्निवेशित कियाहै इसपरभी यदि कहीं अशुद्धि रहगईहो तो पाठकगण क्षमाकरेंगे कारणकि,

श्रीः ।

कविवर विहारीलालजीका–
जीवनचरित्र ।

भारतवर्षमें यद्यपि भाषाके अनेक कवि हुए हैं परन्तु विहारीलालकी सतसईभी कविताका एक अनुपम भंडार है कौन ऐसा रसिक है कि, जिसका चित्त इनके दोहोंको श्रवण कर एक बारही रसमयपूर्ण न होजाय स्वयं कविने कहा है ।

दोहा–सतसैयाके दोहरे, ज्यों नावकके तीर ॥
देखतके छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर ॥ १ ॥
व्रजभाषा बरणी कविन, बहुविधिबुद्धिविलास।
सबकी भूषण सतसई, करी विहारीदास॥ २ ॥

और इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि, सतसईमें यही गुण है इस समयकी प्रथाके अनुसार विहारीलाल कवीश्वरका समय जाति कुल गोत्रका परिचय पाये विना पाठक सन्तुष्ट नहीं होंगे इस कारण इसमेंभी कुछ परिश्रम कर यथाशक्ति पाठकोंके सन्मुख इनका परिचय उपस्थित करते हैं इनके समयका निर्णय करनेमें तो कुछ आपत्ति नहीं पडती कारण कि, स्वयंही कविवरने कहा है ।

है, "साहित्य परिचयसे काव्यलक्षण रसनिरूपण नायिका-भेद अलंकारादिका ज्ञान पाठकोंको सहजमें होजायगा" और इससमयकी परिपाटीके अनुसार यथामिलित विहारीदासका जीवनचरित्र भी लिखदिया है।

टीका करते समय हमने कई सतसई सन्मुख रक्खीं परन्तु एकका क्रम एकसे नहीं मिलता, तथा पाठभेदभी बहुत है इस कठिनाईके दूर करनेके निमित्त आज़मसाही संग्रहके अनुरूपलल्लूजीलाल संग्रहीत दोहोंका अनुसरण करके इस टीकको निर्माण किया है।

विहारीलालकी सतसई क्रमसे निर्मित नहीं हुई; यह एक भिन्न क्रमका ग्रंथ है। इसीकारण इसमें नायिकाभेदादिका क्रम अन्यग्रंथोंके अनुसार नहीं है और यही कारण है कि, दोहोंका एक दूसरेसे अधिक सम्बन्ध नहीं मिलता।

जितने प्राचीन टीकेहैं उन टीकोंमें साहित्यविषयक कोई त्रुटि नहीं है बहुत उपयोगी है परन्तु भावार्थ अक्षरार्थ जाननेके लिये पाठकोंको यह अतिउपयोगी होगा ऐसी मुझे दृढ आशा है।

इसप्रकार प्रबन्धोंसे इस ग्रंथको अलंकृत कर अपने परम माननीय जगद्विख्यात वैश्यवंशदिवाकर "वेंकटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुतखेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयके करकमलमें सब प्रकारके सत्वसहित समर्पित करदिया है; जिन्होंने सबप्रकार कृतकार्य कर हमको सदैव उत्साहित कियाहै।

यथासाध्य दोहोंको शुद्ध कर सन्निवेशित कियाहै इसपरभी यदि कहीं अशुद्धि रहगईहो तो पाठकगण क्षमाकरें कारणकि,

श्रीः ।

कविवर विहारीलालजीका-
जीवनचरित्र ।

भारतवर्षमें यद्यपि भाषाके अनेक कवि हुए हैं परन्तु विहारीलालकी सतसईभी कविताका एक अनुपम भंडार है कौन ऐसा रसिक है कि, जिसका चित्त इनके दोहोंको श्रवण कर एक बारही रसमयपूर्ण न होजाय स्वयं कविने कहा है ।

दोहा-सतसैयाके दोहरे, ज्यों नावकके तीर ॥
देखतके छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर ॥ १ ॥
ब्रजभाषा बरणी कविन, बहुविधिबुद्धिविलास ।
सबकी भूषण सतसई, करी विहारीदास ॥ २ ॥

और इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि, सतसईमें यही गुण है इस समयकी प्रथाके अनुसार विहारीलाल कवीश्वरका समय जाति कुल गोत्रका परिचय पाये विना पाठक सन्तुष्ट नहीं होंगे इस कारण इसमेंभी कुछ परिश्रम कर यथाशक्ति पाठकोंके सन्मुख इनका परिचय उपस्थित करते हैं इनके समयका निर्णय करनेमें तो कुछ आपत्ति नहीं पडती कारण कि, स्वयंही कविवरने कहा है ।

संवत ग्रहशशिजलधिक्षिति, छठतिथि वासर चंद
चैतमास पखकृष्णमें, पूरण आनँदकंद ॥ ३ ॥

संवत् १७१९ चैत्रकृष्ण छठ चन्द्रवारके दिन सतसईको पूर्ण किया, इस वचनसे तो इनका समय जाननेमें अब किसी प्रकार सन्देह नहीं रहा, परंतु इस वातमें विवाद पड़ता है कि, उक्त कविका कुल गोत्र क्या था नीचे लिखे दोहेके आश्रित हो कोई उनको राय कोई सनाढ्यमिश्र कोई रामचंद्रिकाप्रणेता केशवदासका पुत्र कोई कान्यकुब्ज, कोई माथुर ब्राह्मण कहकर उनके परिचय देते हैं वह दोहा यह है ।

जन्म लियो द्विजराजकुल, प्रगट बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेश सब, केशव केशवराय ॥ ४ ॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ कुलमें जन्म लिया ब्रजमें आकर प्रगट बसे केशव (कृष्ण) केशवराय पिता (पिता) मेरे सम्पूर्ण क्लेश हरो ॥ ४ ॥

इस दोहेमें केशवराय पर अवलम्बन करके जो कविवरको राय कथन करते हैं, यह युक्ति संगत नहीं, क्योंकि इसके साथही वह द्विजराज कुलका जन्म कहते हैं कि, केशवरायने ब्राह्मणकुलके उच्चवंशमें जन्म लिया, और ब्रजमें आकर बसे केशवराय नाम था कुछ इसके अन्तमें कुलोपाधिका कथन नहीं है, इसकारण यह सिद्ध होता है कि, के-

शवरायजी अन्य स्थानसे ब्रजसेवनके लिये आवसे थे और ब्रजमेंही कविवर विहारीलालका जन्म हुआ जिसकारण उनके सब आचार विचार ब्रजभाषा सब ब्रजवासियोंकी ही समान थी. अब इस बातका विचार करना है कि, कविप्रिया रसिकप्रिया रामचन्द्रिकादि प्रसिद्ध ग्रन्थोंके निर्माता कविवर केशवदासजीही इनके पिता थे और इसीकारण उनको सनाढ्य ब्राह्मणमिश्र कहाजाय तो यह भी युक्तिसंगत बोध नहीं होता, कारण कि, टिहरीनिवासी कविवर केशवदासजीका शरीर लगभग १६७० संवत्में पात होगया था गोस्वामी तुलसीदासजीसे पहलेही यह मृतक होगये, अर्थात् ओड़छाधीश राजा इन्द्रजित्के अभिचारसे समाजसहित प्रेतयोनिको प्राप्त होगये ।

इनके निर्मित ग्रन्थोंकी अधिकाईसे विदित होता है कि, इनकी अवस्था साठ सत्तर वर्षकी होगी यदि कविवर विहारीलाल तीस वर्षकी अवस्थामें उत्पन्न हुए हों तो भी सतसई निर्माणसमय उनकी अवस्था सत्तर वर्षके लगभग होनी चाहिये परंतु सतसई देखनेसे साफ विदित होता है कि, सतसई का निर्माण पूर्ण युवावस्थामें हुआ है, सतसईके रसीले भाव देखनेसे उस समयतक सतसईकारकी अवस्था तीसवर्षकी कदाचित् न हुई हो, और केशवदासजीकाभी ब्रजवास प्रसिद्ध नहीं है इस कारण इन केशवदासजीके पुत्र कविवर

विहारीलालजी नहीं हैं, और सनाढ्यब्राह्मणभी नहीं हैं-क्योंकि इनके और केशदासजीके समयमें बड़ा अन्तर है।

अब दूसरा विचार है कि, कितनेही विचारशीलोंके मतसे विहारीलालको माथुरवंशदिवाकर एवं भाषाकाव्यसंग्रहमें इनको कान्यकुब्जवंशोत्पन्न वर्णन किया है।

यदि इनको कान्यकुब्ज मानें तो सतसईमें केवल इतनी उपपत्ति प्राप्त होती है कि, "प्रगट भये द्विजराजकुल" अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया और ब्रजमें आकर बसे इसमें यह विदित होता है कि, कविवरके पिता अन्यस्थानसे यहां आकर बसे थे, और कुछ सन्देह नहीं कि, वे केशवरायजी कान्यकुब्ज हो अबभी देखाजाता है कि, कान्यकुब्जोंको कुलाभिमान अत्यन्त होता है और कविवरने भी अपने निमित्त द्विजराजकुल कहा है इससे अधिक कान्यकुब्जोंमें धीरता वीरता भी होती है और विहारीलाल जयसाहके साथ संग्रामोंमें भी रहे हैं यथा।

यों दल काढे बलखतें, तें जयसिंह भुआल।
वदन अघासुरके परे,ज्यों हरि गाय गुवाल ॥१॥

बस इससे अधिक और प्रमाण हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ दूसरा पक्ष विहारीलालके माथुर एवं एक और ग्वालियरके निकट बसुआ गोविन्दपुर गांव इनकी जन्मभूमि गाई

जाती है, और मथुरामें श्वसुराल कही जाती है परन्तु माथुर-वंशसे इस पक्षमें विरोध नहीं है, लोकमें कृष्णकविको विहारीलालका पुत्र और शिष्यभी कहते हैं यदि सत्यही यह विहारीलालके पुत्र हैं तो नीचे लिखे दोहेके अनुसार वह माथुर-ब्राह्मण हैं।

माथुर विप्र ककोरकुल, बसत मधुपुरी गाँव ॥

जो हो उनके आचार व्यवहारसे तथा गोविन्दपुरमें केशवरायका वर्णन मिलनेसे अधिकतर यही विदित होता है कि, कदाचित् विहारीलालजी माथुरवंशावतंसही हों कारण कि, और स्थानोंकी अपेक्षा माथुरवंशमें इनकी चरचा अधिक है, जो कुछभीहो कविवर विहारीलालके उच्चकुल ब्राह्मण होनेमें तथा अनेकभाषाके ज्ञाता और संस्कृतके पंडित होनेमें तो किसीको किसीप्रकारका सन्देह नहीं है।

अभी यह बातभी जाननेयोग्य है कि, सतसई किसप्रकार निर्मित हुई स्वयं यदा तदा विहारीलालजी लिखतेरहे वा इसमें किसीकी प्रेरणाथी इसके लिये इतनाही बहुत होगा कि-

हुकुम पाय जयसाहको, हरिराधिका प्रसाद।
करी विहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥

इस वचनसे जयशाहकी आज्ञासे सतसईका निर्माण होना जानाजाता है और राजाज्ञाकेही कारण बहुत समझ सोचकर

शनैः २ यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है, और जयसाहके परलोक पहुँचनेपरभी पीछे कुछ दोहे लिखेगये हैं, जिनमें कुछ नीति वैराग्य आदिकीभी छटा लक्षितहोती है।

जयसिंह कौन थे इनके यहाँ विहारीलाल कैसे पहुँचे इस बातकाभी प्रगटहोना अवश्य है यद्यपि इसमेंभी कुछमतभेद पडता है क्योंकि कई जयसिंह हुए हैं परन्तु इतिहाससे जैसा कुछ मिलता है सो वर्णन करते हैं।

सम्वत् १६७२ में राजा मानसिंहका देवलोक हुआ तदुपरान्त महाराज कुँवर भाऊसिंह गद्दीपर बैठे यह कुछ प्र-तापशाली न हुए, इसकारण इनके कुछही दिन उपरान्त महासिंह राजा हुए सम्वत् १६७८ में महासिंहने गद्दी पाई यहभी पूर्वजके समान अत्यन्त पानासक्त होकर अकालमें कालकवलित हुए, राजा मानसिंहके इन दो उत्तराधिकारि-योंकी अयोग्यतासे अम्बरका गौरव मलीन होगया था, इसी अवसरमें जोधपुरके राजा सम्राट् सभामें प्रधानताके पदको पागये थे, जहांगीरने अपनी बेगम महारानी जोधबाईकी स-म्मतिसे जगत्सिंहके पुत्र (मानसिंहके भतीजे) को अम्ब-रका सिंहासन देदिया, इसकारण सम्राट्की प्यारी बीबी नूर-जहांको अत्यन्त डाह हुआ भट्टग्रन्थमें लिखाहै कि, रनवा-सके एक नयामहलमें बैठकर बादशाहने अपनी स्त्री जोधबाईसे जयसिंहको राज देनेके लिये सम्मति की थी, जयसिंहभी एक

कोनेमें लगे हुए बादशाहके हुक्मकी बाट देखरहेथे, दोनों-का तर्क वितर्क जब पूर्ण हुआ तब जहाँगीरने हर्षसे कहा जयसिंह ! जोधबाईकी महरबानी (कृपा) से तुम अम्बरके राजा हुए, इसवक्त अपनी परवरिश करनेवालीको सलाम करके अपने राज्यको जाओ । जयसिंह आनंदित हुए पर उन्होंने जोधबाईको सलाम करना स्वीकार न करके कहा सम्राट ! आपके महान् राजवंशकी जिस स्त्रीको आप सलाम करनेके लिये कहैं मैं उसहीको सलाम करसकता हूं परन्तु जोधबाईको नहीं करसकता कारण कि, यह राजपूतोंके आचार विचारका विरोध करती है।

सम्राट्से विदा होकर जयसिंह राजधानीमें आये और कुछही दिनोंके उपरान्त अपनी नवोढा रानीके प्रेममें फँसकर राजकाजमें ढील डालदी, उस समय वहांके कार्यवाले सभासदोंने विहारीलालसे साक्षात् कर उनको जयसिंहके पास भेजा उससमय विहारीलालने महाराजको यह दोहा सुनाया * ।

नहिं परागनहिं मधुरमधु, नहिंविकासयहिकाल ।
अली कलीहीसों बिँध्यो, आगे कौन हवाल ॥

---

* कोई कहते हैं कि, यह दोहा फूलोंमें रखकर [illegible] नवीन पलंग पर रानीकी सेजपर बिछादिया जब राजाने फूल कुम्हलाये और कागज देखकर दोहा पढ़कर इनको बुलवाया और अपने यहां रखलिया.

इसको सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और दरबार किया तथा विहारीलालको बहुत कुछ भेंट देकर अपने स्थानपर रखलिया। इसही दोहेपर १०० अशरफी उक्त कविको मिलीं परन्तु महाराजने कहा कि, इसप्रकारके दोहेपर एक एक गाँवभी थोड़ा है, आगे औरभी दोहे बनानेकी आज्ञादी कविवर-जयपुर अम्बरमें रहने लगे इनके काव्यमें जयपुरके दृश्यके अनेक दोहे पायेजाते हैं ॥

यथा-(फीको परै न वर फटै रँगो लोहरँग चीर, मनहुताफता कीन) इत्यादि अनेक वत्ती मलग्रन्थमें देखनेसे मिलैंगी।

राजपूतानेमें जयसिंह मिरजानामसे प्रसिद्ध हैं, यह मानसिंहके योग्य वंशधर हुए औरंगजेबके राजत्वकालमें इन्होंने मुगलोंके बहुत उपकार किये थे इसीकारण औरंगजेबने इनको ६००० सेनाका सेनापति बनाया, इसी कुशावह वीरके कौशल जालसे महाराज कुलतिलक शिवाजी बन्दी होगये थे उससमय विहारीलालने पढा था।

सामा सैन सयान सुख, सबै शाहके साथ।
बाहुबली जयशाहजू, फतै तिहारे हाथ ॥

महाराज जयसिंहने शिवाजीको निरापद रखनेकी प्रतिज्ञाकी थी परन्तु जब औरंगजेबके कपटसे वह टूटनेपर हुई तब महाराज जयसिंहने शिवाजीके भगानेमें सहायता की यह

महानुभावता साधारण बात नहीं है परन्तु इनके उज्वल माहात्म्यके गौरवमें विश्वासघातका कुछ कुछ कलंक झिल-मिलाने लगा था, महाराज जयसिंहकेही यत्नसे कपटखान औरंगजेबके समस्त कूटचक्र विफल हुए थे महाराज जयसिं-हके यहां बाईस सहस्र राजपूत घुड़सवार और २२ ही प्रधा-न सेनापति थे अन्य ग्रन्थोंमे लिखाहै कि, महाराज अपने कइ सरदारोंको साथ लेकर दरबारमें बैठा करते थे,दरबारमें बैठनेके समय हाथमें दो दर्पण लेलेते थे एक दर्पणको दिल्ली और दूसरेको सितारा बताकर भूमिमें डालदेते, दिल्लीवाले द-र्पणको हाथमें रखकर कहाकरते थे कि,सितारा तो पातालको चला और दिल्लीके भाग्यका डोराभी मेरे बायें हाथमें है। मैं इच्छा करूं तो इसकोभी इसी प्रकार स्वच्छन्दतासे वशी भूत करसकता हूं, धीरे धीरे यह बात औरंगजेबके कानतक पहुँचगई, सम्राट् इनके प्राणोंका ग्राहक हुआ, परन्तु जय-सिंह कोई साधारण राजा नहीं थे, जो औरंगजेब इनको इच्छाकरतेही मारडालता औरंगजेबने एक घृणित उपायको अवलम्बन किया, महाराज जयसिंहके कीरतसिंह नामक एक छोटा पुत्र था, इसको राज्यका लोभ दिलाकर महारा-जके विरुद्ध उकसाया, जब देखा कि, यह सबप्रकारसे मेरी सहायता करनेको तैयार है, तब कीरतसिंहसे कहा तुम जयसिंहको मारडालो मैं तुमको अम्बरकी गद्दी दूंगा, कैसी भयानक बात है कि, राजकुलमें जन्म लेकर राज्यके लिये

ऐसे गुणवान् पिताको मारडालनेका विचार ! दुःखकी बात है कि, पाखण्डी कीरतसिंहने इस भयानक दुष्कर्मको करना स्वीकार किया और अफीमके साथ विष मिलाकर महाराजको भक्षण कराया, परन्तु इस पितृघाती पाखण्डीको बादशाहने भी धोखादिया, केवल एक कामता नामक जनपद इस कुलांगारके हाथ आया ।

जिस दिन राक्षसपुत्रकी विश्वासघातकता और नृशंशतासे राजपूतगौरव महाराज जयसिंह इस लोकको छोड़गये, उसही दिन अम्बरके भाग्याकाशमें एक गंभीर काला मेघ छागया, उसके साथही कुशावहकुलकी गौरवगरिमा प्रभाहीन होगई फिर वह गंभीर मेघ लोप नहीं हुआ जिन कुशावह राजाओंके प्रचण्डप्रतापसे एक समय दिल्लीका सिंहासन कम्पायमान होगया था उनके वंशधरोंने फिर उस प्रदीप्त गौरवको प्राप्त नहीं किया मानो आजतक उस वधका प्रायश्चित्त पूर्ण नहीं हुआ है ।

सम्वत १७२१ देमें जब इस प्रकार जयशाहका शरीर पात हुआ और उनके दायाद रामसिंह और कृष्णसिंहने राज्य

के निमित्त झगड़ा किया, इससमय प्रजाको बड़ी कठिनाई पड़ी थी कदाचित् इसीसमय कविवरने यह दोहा कहाहै।

दोहा–दुसह दुराज प्रजानको, क्योंबाढ़ै दुखद्वंद।
अधिक अँधेरोजगकरै, मिलिमावसरविचंद॥

फिर राज्यकी पलटसे गुणग्राहक न रहनेके कारण कविवरने वहां रहना उचित न जाना कदाचित् ऐसेही प्रसंगपर नीचे लिखा काव्य कियाहो।

दोहा–चलेजाहु ह्यां को करत, हाथिनको व्यवहार।
नहिं जानत ह्यां वसत हैं, धोबी और कुम्हार॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुबीत बहार।
अब अलि रहीगुलाबकी, निपटकटीलीडार॥

कहते हैं कि, यही विचार कविवर वहांसे कृष्णकविको साथले मारवाड़की ओर चलेगये, उससमय दरबारमें इनके दोहोंका अर्थ होता था, विद्वानोंने कई२ प्रकारसे अर्थ किये थे विहारीलालने देखा कि, अपना परिचय अब देना ठीक नहीं कारण कि, इससे अधिक और अर्थ अब हम क्या करेंगे, मारवाड़के विषयमें उन्होंने कहा है।

दोहा–विषमवृषादिककीतृषा, जियेमतीरनिशोधि।
अमितअपारअगाधजल, मारोमूं ड़पयोधि॥

प्यासे दुपहरजेठके, थके सबै जल शोधि ।
मरु धर पाय मतीरही, मारू कहतिपयोधि ॥

विहारीलाल तत्कालभी प्रसंगानुसार दोहा निर्माण करते थे कोई चित्रकार एक वृक्षके नीचे अहि मयूर मृग बाघ बनाकर लाया महाराज जयसिंहने विहारीलालसे यह प्रसंग पूंछा तब कविवरने कहा ।

दोहा-कहलाने एकतवसत,अहि मयूर मृगबाघ।
जगत तपोवनसोकियो, दीरघदाघनिदाघ॥

जब जयसाह इस संसारको त्यागगये तब इन कविवरका चित्त शृंगाररसकी ओरसे खिचगया और नीति उपदेश आदिके दोहे निर्माणकर संवत् १७१९ में उन्होंने सतसई पूर्ण करदी ।

अन्य कवीश्वरोंकी भांति विहारीलालने अपने महाराजकी लम्बी चौडी प्रसंशा न करके राधाकृष्णके गुणानुवादमें विशेष कविता निर्माण की है,इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि, अन्तके जीवनके दिन उन्होंने भगवद्भजनमेंही व्यतीत किये इसके प्रमाणके निम्नलिखित दोहे हैं ॥

दोहा-अपने २ मत लगे, वादि मचावत शोर ।
ज्यों त्यों सबको सेइबो,एकै नंदकिशोर॥

मोहिं तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै यदुराज।
अपने २ विरदकी, दुहूँ निबाहन लाज ॥

आगे कितने समयतक कविवर इस संसारमें रहे सो विदित नहीं होता सतसई क्रमानुसार नहीं लिखीगई यह फुटकर दोहे भिन्न समयमें भिन्न २ विषयक कथन हुए हैं पीछे जब ग्रन्थ दुर्लभसा होने लगा तब रसिकजनोंने अपनी इच्छानुसार इसको शृंखलाबद्ध किया और किसी किसीने टीकेभी निर्माण किये यद्यपि इसपर बीस पच्चीस टीका हुई हैं परन्तु प्राचीन टीकाओंमें सूरतमिश्रकी टीका सराही-जाती है।

यद्यपि कविवरका पूर्ण वृत्तान्त अलभ्य है परन्तु इसके न मिलनेसे कोई विशेष क्षति नहीं है उनका एक दोहाभी जबतक भूमण्डलमें रहेगा तबतक उनका गौरव और कीर्त्ति संसारमें विद्यमान रहेगी इसकारण अधिक विस्तार न करके इतनेहीमें कविकी जीवनी पूर्ण करते हैं।

पण्डित-ज्वालाप्रसादमिश्र.

साहित्यपरिचय ।

सतसईमें साहित्यविषयक जो वर्णन आयाहै उसको संक्षेपसे वर्णन करतेहैं साहित्यदर्पणमें 'वाक्यरसात्मककाव्यम्' और काव्यप्रकाशमें 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापीति' और रसरहस्यके कवि कहतेहैं ।

जगते अद्भुत सुखसदन, शब्दरु अर्थ कवित्त ।
यह लक्षण मैंने कियो, समुझि ग्रन्थ बहु चित्त ॥

इसमें जगतसे अद्भुत सुख लोकोत्तर चमत्कारकाही नाम काव्य कथन हुआहै, इससेभी यह विदित होताहै कि, इसके विना सुखकी प्राप्ति नहीं इसकारण जिस कवितामें रस सुख लोकोत्तर चमत्कारहै वही काव्य कहाताहै, काव्यके अनेक भेदहैं तथा उसकी शक्ति अभिधालक्षणा व्यंजनादिका विस्तार साहित्यग्रन्थोंमें विस्तारके साथ लिखाहै, यहां केवल मनोरंजनीय विषयको वर्णन करतेहैं, जिसके होनेसे काव्य कहलाताहै वह रस; क्या है ? ।

मिलि विभाव अनुभाव अरु, संचारी सुअनूप ।
व्यंग्य कियो थिरभाव जो, सोई रस सुख भूप ॥

अपनी सामर्थ्यप्रधान मनोविकार उनके कारण उसके कार्य और सहकारी मनोविकार यह क्रमसे स्थायीभाव

विभाव अनुभाव संचारीभाव कहाते हैं इनके योगसे पुष्टहुए स्थायीभावको रस कहते हैं।

नाटक देखने काव्य पढ़नेसे जो एक विलक्षण सुख आनंद प्राप्त होताहै उसीका नाम रसहै, चमत्कार कहनेका आशय यह कि, वारंवार अनुभव करनेसे सुखहीकी प्राप्तिहो इस प्रकारका विलक्षण आनंद कविकी रचनाचातुरीसे प्रगट होताहै सहृदय पुरुषही इसके अनुभव करनेमें समर्थ हैं अन्य नहीं ऊपर कही सब सामग्री जिस श्लोकमें व जिस कवित्तमें होती है वही सरस कहाताहै।

कविजनोंके हृदयमें जो मनोविकार उठतेहैं तथा जो प्रकृतिका अनुभव उनको यथार्थरूपसे होगयाहै उसका यथायोग्य वर्णन करके दूसरोंके हृदयमें उसकी पूर्णता दिखासकतेहैं।

इसीप्रकार हर्ष शोक भय त्रास आदि मनोविकारभी कारण कार्य और सहकारी प्रसंगके अनुसार जानने योग्य हैं अर्थात् कविजन अपने काव्यमें जिन २ मनके विकारोंका वर्णन करतेहैं, उन सबके कारण कार्य और उनके सहकारी अपर मनोविकार इन सबका काव्यमें यदि सविस्तर और यथायोग्य उद्भावन करें तो ऐसे काव्यके पढ़ने वा नाटकके देखनेसे दूसरोंकेभी अन्तःकरणमें वेही मनोविकार जागृत होतेहैं और यह स्पष्ट जानपडताहै कि, हम उनका

पूर्ण अनुभव कररहेहैं इसप्रकारका भास होनेसे उस समय जो विलक्षण आनंद होताहै उसीको रस कहतेहैं, संचारी स्थायीआदि भाव क्या वस्तुहैं सो कहतेहैं ।

जिनते जिनको जगतमें, प्रगटतहै थिरभाव ॥
तेई नित्य कवित्तमें, पावहिं नाम विभाव ॥
थिरभावनिको औरको, प्रगटै ते अनुभाव ॥
संचारी जेहि साथ है, बहुत बढावै दाव ॥ २ ॥

आलम्बन उद्दीपन ।

जे निवास थिरभावके, ते आलम्बन जानि ।
सुधि आवै जिनके लखे, ते उद्दीप बखानि ॥
आलम्बन रतिके कहत, नवल नारि अस कंत ॥
उद्दीपन बहुभांतिके, वन घन शरद वसंत ॥ २ ॥

अनुभाववर्णन ।

वचन चितैबो चलन विधि, और जे सात्विकभाव ।
आलिंगन चुम्बन जिते, ते सब हैं अनुभाव ॥

आठप्रकारके सात्विक ।

थंभिबहिबो सुरभंग पुनि, कम्प स्वेद अँसुवानि ।
रोम विवर्णह अन्ततनु, सात्विक भावन जानि ॥

संचारीभाव तेतीसहैं निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, लाज, वेग, चपलता, जड़ता, हर्ष, गर्व, विषाद, नींद, अमर्ष, औत्सुक्य, अपस्मार, सोना, बोध, उग्रता, मरण, बुद्धि, व्याधि, अवहित्थ, त्रास, उन्मादता, तर्क, विलास यह तेतीस संचारी नौरसके साथ रहतेहैं ।

स्थायीभाव ।

सब भावनि सरदार है, टारिसक नहि कोय ।
सो थिरभाव बखानिये, रस स्वरूप जो होय ॥

इनके नौ भेद ।

रस सुहास अरु शोक पुनि, कहत क्रोध उत्साह ।
भय अरु ग्लानी आचरज, थिरभावनु कविनाह ॥

शांतरसका निर्वेद भी स्थायी होता है ॥

रसोंके भेद ।

पहलो रस शृंगार पुनि, हास्यरु करुण बखानि ।
रौद्रो वीर भयानको, अरु बीभत्सहि जानि ॥
अद्भुतसों मिलि आठ यह, रस नाटकमें होत ।
शांतिसहित नौ काव्यमें, कविकुल कहत उदोत ॥

शृंगारमें कामका उद्भव होनाहै उत्तम प्रकृति है नवीन अनुरागिणी नायिका आलम्बन है दक्षिणादि नायक आलंब-

नहैं चन्द्र चन्दन कोकिलादिके शब्द इसके उद्दीपनहैं भ्रूवि-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव आलस्य जुगुप्सा व्यभिचारीहैं रति-स्थायीभाव श्यामवर्ण विष्णु देवताहै ॥ १ ॥

विकृताकार वाणी चेष्टा आदिसे हास्यरस उत्पन्न होताहै हास्यस्थायीभाव श्वेतवर्ण प्रमथ देवता, जिस वाणी वा चेष्टा को देखकर मनुष्य हँसै वह, आलम्बन और उसकी चेष्टा उद्दीपन है अक्षिसंकोच स्मेरतादिक अनुभाव, निद्रा आलस्य अवहित्थादि व्यभिचारी हैं, ।

इष्टका नाश अनिष्टकी प्राप्ति करुणारस है यह कपोतवर्ण यम देवता वाला है इसमें शोकस्थायी भाव, शोच्य आलम्बन दाहादिकावस्था उद्दीपन हैं, दैवनिंदा, भूपात, क्रन्दन यह अनुभाव हैं, तथा विवर्ण, उच्छ्वासनिश्वास, स्तम्भ, प्रलयन, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदिक व्यभिचारी हैं।

रौद्रमें क्रोध स्थायीभाव, रक्तवर्ण रुद्र देवता शत्रु आल-म्बन, उनकी चेष्टा उद्दीपन है, मुष्टिप्रहारपतन विकृति अवदारण संग्राम संभ्रममें इसकी उद्दीपना होती है, भ्रूभंग, होठ काटना, खंभ ठोंकना, तर्जन, अपनी बड़ाई, आयुध विक्षेप अनुभाव हैं आक्षेप, क्रूर, सन्दर्शन, उग्रता, वेग, रोमांच स्वेद, वेपथु मद, मोह, आमर्ष, व्यभिचारीभाव हैं ।

उत्तम प्रकृतिवाला वीररस है उत्साह स्थायीभाव है महेन्द्र देवता हेमवर्ण विजितादिक आलम्बन विभाव हैं, सहाय अन्वेषणादि अनुभाव है धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च संचारीभाव हैं।

भयानक रसमें भय स्थायीभाव काल देवता, स्त्री नीच प्रकृति कृष्णवर्ण है, जिससे भय उपजे वह इसमें आलम्बन है, घोरतर उसकी चेष्टा उद्दीपन है, विवर्ण गद्गदस्वरभाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, दिशाओंका देखना, अनुभाव, जुगुप्सा, वेग, सम्मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंख, अपस्मार, संभ्रान्ति, मृत्युआदि इसमें व्याभिचारी हैं।

वीभत्सरसमें जुगुप्सा (निन्दा) स्थायिभावसे रहती है नीलवर्ण महाकाल इसका देवता है दुर्गंध मांसभेद इसका आलम्बन है, कृमिपातादि उद्दीपन है, निष्ठीवन नेत्रसंकोचनादि अनुभाव, मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि, मरणादिक संचारीभाव हैं।

अद्भुतरसमें विस्मय स्थायीभाव गंधर्व देवता पीतवर्ण अलौकिक वस्तु आलम्बन, उसके गुणोंकी महिमा उद्दीपन है, स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गद्गद, स्वर, सम्भ्रम, नेत्रविकासादि अनुभाव, और वितर्क, आवेग, संभ्रान्ति, हर्षादिक इसके व्यभिचारी हैं।

शान्तरसमें शम स्थायिभाव, उत्तम प्रकृति, कुन्द और चन्द्रमाके समानवर्ण श्रीनारायण देवता, अनित्यता वस्तुकी निस्सारता वा परमात्माका स्वरूप इसका आलम्बन है, पुण्याश्रमक्षेत्र तीर्थ महापुरुषोंका संग उद्दीपन है, और रोमांचादि अनुभाव तथा निर्वेद हर्ष स्मरण अतिभूत दयादिक संचारी हैं ।

कोई दशवाँ वत्सल रस कहते हैं, वत्सलता स्नेह स्थायि-भाव पुत्रादि आलम्बन, उसकी चेष्टा विद्या शौर्य्यादि उद्दीपन, आलिंगन, स्पर्श, चुम्बन, पुलकादि आनंद अनुभाव, अनिष्टकी आशंका, हर्ष, गर्व, संचारीभावहैं कमलके गर्भके समान वर्ण लोकमाता ये देवता हैं ।

इसके आगे काव्यकी ध्वनि व्यंजना लक्षणका विस्तार होताहै परन्तु हम सतसईमात्रका विषय संक्षेपसे दिखाते हैं इनके आलम्बन नायकआदि हैं उनको कहते हैं त्यागी, कृती, कुलीन, लक्ष्मीसम्पन्न रूप यौवनसे युक्त उत्साहवान्, चतुर, अनुरक्त, शीलवान्, ऐसा यह नायकके लक्षण हैं, धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त नायकके यह चार भेद हैं अपनी बड़ाई न करनेवाले क्षमावान् गंभीर महाबली दृढ़-प्रतिज्ञ धीरोदात्त हैं यथा राम युधिष्ठिरादि ।

मायावी चपल अहंकारदर्पसे युक्त अपनी बड़ाई करने-वाला धीरोद्धत है, यथा भीमसेनादि निश्चिन्त मृदुकलाओंमें

तत्पर धीर ललित है. जैसे रत्नावलीमें वत्सराजादि, सामान्य गुणोंसे युक्त देव द्विजपूजक धीरप्रशान्त होता है इन प्रत्येकके साथ दक्षिण धृष्ट अनुकूल शठ लगानेसे नायकके सोलह भेद होते हैं, अनेक स्त्रियोंमें समान अनुराग रखनेवाला दक्षिणनायक है, और अपराध करनेपरभी निश्शंक तर्जनसेभी लज्जित न होनेवाला दोष देखनेपरभी मिथ्यावादी धृष्टनायक है, एकही स्त्रीमें निरत रहनेवाला अनुकूल है और बाहरसे प्रेम दिखाकर भीतरसे शून्य और विपरीत आचरण करै वह शठनायक है यह सब उत्तम मध्यम अधम लगानेसे ४८ प्रकारके होते हैं नायिकाओंके भी तीन भेद हैं, अपनी स्त्री दूसरेकी स्त्री साधारण स्त्री विनय आर्जवादि गुणसे युक्त गृहकर्ममें तत्पर पतिव्रता स्वीया है यह मुग्धा मध्या प्रगल्भा तीन प्रकारकी है, नवयौवनवाली, रतिमें वाम, मानमें मृदु, अधिक लज्जावती मुग्धा कहाती है, विचित्र सुरतवाली कामसे पूर्ण प्रगल्भ वचनवाली, कुछ लज्जावती मध्यमा है कामसे अन्धी अतितरुण समस्त रतिकी ज्ञाता भावमें उन्नत नायककी आक्रमण करनेवाली प्रगल्भा कहाती है।

यही प्रत्येक धीरा, अधीरा, धीराधीरा इन भेदोंसे छः प्रकारकी होती हैं इनमें कुछ हँसकर वक्र उक्तिसे कहनेवाली तथा क्रोधसे जलानेवाली, मध्याधीरा जाननी, धीराधीरा

रुदन करती है, और अधीरा कठोर वचन कहती है यह सबमें लगालेना, प्रगल्भा यदि धीरा होती है तो क्रोध छिपाकर बहुत आदर दिखाती है, सुरतमें उदासीन होती है; परकीया दो प्रकारकी हैं प्रौढा और कन्या, यात्रादिमें निरत लाजहीन कुलटा प्रौढा कहाती है, नवयौवना शीलवान् लज्जायुक्त कन्या होती है, सामान्यस्त्रीमें धीरा कलाओंमें प्रगल्भा वेश्या होती है यह किसीमें अनुराग नहीं करती, इनकी दृष्टिमें गुणी निर्गुणी कोई नहीं, केवल धनमात्रके लोभसे बनावटी गाढा प्रेम दिखाती हैं, अंगीकार करके भी क्षीणधन पुरुष यह घरसे निकाल देती हैं तस्कर पण्डक मूर्ख जिनको सेतमेत सुखसे धन मिलगया है वही इनके प्रिय होते हैं " कैसा बीभत्स व्यापार है, माता पिता कष्ट पाओ कुछ चिन्ता नहीं, स्त्री महाशोकसागरमें मग्न हो कुछ चिन्ता नहीं, पिता गरमी जाड़ा वर्षानमें वस्त्र अन्नका कष्ट भोगें कुछ चिन्ता नहीं, वृद्धावस्थामें हम क्या करेंगे कुछ चिन्ता नहीं लोक हमारा हास्य करते हैं कुछ चिन्ता नहीं जायदात गिरवी हुई कुछ चिन्ता नहीं जातिसे पतित होंगे धर्म जायगा कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि यहाँ सर्वस्व चलाजाता है कुछ चिन्ता नहीं, परंतु यदि अपने कुटुम्बके निमित्त दो पैसेका खर्च आजाय तो पगके तलेसे भूमि निकल जाती है बहुत क्या वारांगनाकी आज्ञामें जो हो यही होगा और

कुटुम्बी हितकारीजनोंके उत्तरके 'नहीं' यही दो अक्षर होते हैं परंतु "सबै दिन नाहिं बरोबर जात" अंतमें क्षीण धन होनेसे निकाले जाते और पछताते हैं यह रक्तहों वा विरक्त हों इनमें प्रीति दुर्लभ है।

कोई इनमें कामके वशीभूत होनेसे अनुरागिणी भी होती है।

अन्य स्त्रियोंके स्वाधीनभर्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता यह भेद हैं।

जो अपने स्वामीके सदा प्रेममें आधीन रहै यह स्वाधीनभर्तृका, अन्य स्त्रीसे रति करके उसके चिह्नोंसे युक्त पति जिसके पास आवै वह खण्डिता, जो वेष छिपाकर संकेतमें नायकके पास जाय वह अभिसारिका, क्षेत्र बावड़ीके निकट भग्नदेवालय दूतीके घर वन स्मशान नदी आदिका तट यह अंधकारके समय इनके अभिसारके स्थान हैं। जो क्रोधसे बुरे वचन कहकर प्राणनाथको बाहर करदे पीछे पछतावै वह कलहान्तरिता है, जिसका प्रीतम संकेत करके मिलनेको न आवै वह विप्रलब्धा। जिसका पति कार्यवश परदेश गया हो उसकी कामार्त्त स्त्री प्रोषितभर्तृका कहातीहै, जो स्वामीका संगम जान कर शृंगार कर सेज प्रस्तुत करती है वह वासकसज्जा, आनेका निश्चय करके प्रारम्भमें जिस-

का पति न आवै वह विरहोत्कंठिता कहातीहै इनमें मध्यम अधम लगाकर ३८४ सेभी अधिक नायकाभेद होते हैं सो विस्तारभयसे नहीं लिखे, इनके शरीरमें कारण अट्ठाईस विकार होते हैं और भावसे लेकर धैर्यतक दशपुरुषोंमें होते हैं यथाहि—

भाव—निर्विकारात्मक चित्तमें पहला विकार (विभाव भ्रूनेत्रादिके विकारसे सम्भोगकी इच्छा प्रगट करनी, थोडा संलक्ष्यका विकार हाव है। खल्वादिके अत्यन्त प्रगट विकारका नाम हेलाहै। रूप यौवनके लालित्यका नाम शोभाहै। कामकी अधिकाईके प्रकाशका नाम कान्ति कान्तिकी अधिकाई दीप्ति सब अवस्थामें रमणीयताका नाम माधुर्य है। भय न माननेका नाम प्रागल्भ्यहै। विनयका नाम औदार्यहै। अपनी श्लाघा करके चंचलता त्यागकर स्थिर मनोवृत्ति रखना धैर्यहै। अलंकार धारणपूर्वक प्रीतियुक्त प्रेमभरे वचन प्रियकी अनुकृतिका नाम लीलाहै। इष्टके देखनेसे स्थान आसनादि तथा मुख नेत्रादिकी विशेष विधि नाम विलासहै। कान्तिकी पुष्टि करनेवाली थोड़ी अलंकार रचनाका नाम विच्छित्ति है इष्ट वस्तुकाभी निरादर करना इसका नाम विब्बोक है। प्रीतमके संग उत्पन्न हुए हर्षसे मृदुहास शुष्करुदन हास त्रास भय मानके श्रमका आरोप इन सबके एकत्र समावेशका

किल किंचितहै। प्रीतमकी कथादिमें भाव रखकर कानआदिके खुजाते जानेका नाम मोहायित है । प्रीतमके केश स्तन अधरादिके स्पर्श करनेसे जो सम्भ्रमसे हाथ पैरका विधूनन है उसको कुट्टमित कहते हैं । जो पतिके आगमनादिके हर्षमें शीघ्रताके कारण अन्यस्थानमें अन्यभूषणोंका धारण करनाहै उसको विभ्रम कहते हैं। सुकुमारतासे अंगोंके विन्यासको ललित कहते हैं। सौभाग्य यौवनके मदसे उत्पन्न हुआ विकार मदहै । वचन कहनेके समय लाजसे जो न कहाजाय वह विकृतहै। प्रियके वियोगसे कामावेशकी चेष्टासे उत्पन्न व्यापार पतनहै । जो जानकर भी अज्ञानके समान प्रियासे वस्तु आदिके निमित्त प्रश्न है उसका नाम मौग्ध्यहै । प्रीतमके समीप भूषणोंकी अर्धरचना, निरर्थक चारों ओर देखना कुछ मंद मंद गोपनीय विषयको कहना विक्षेप है। रम्यवस्तुके देखनेकी चंचलताका नाम कुतूहल है । यौवनके उद्भेदसे वृथाहास्यका नाम हसित है । प्रीतमके आगे थोडे कारणसेभी भयसे संभ्रमका नाम चकितहै। विहारमें प्रीतमके साथ क्रीडाका नाम केलि है। यह अट्ठाइस विकार स्त्रीजनोंको होते हैं, भावसे लेकर पर्यन्त दश पुरुषोंको होते हैं। मुग्धा कन्या केवल देखती है, बहुत पूछनेसे कुछ कहतीहै । लज्जा दर्शन चेष्टा तथा हृदयके सुखसे स्त्रियोंके भाव प्रगट होते हैं कलाकौशल उत्साह युक्त

भक्तिमान् तत्त्वज्ञाता स्मृतिवान् मधुरभाषी बहुत वाचालता-युक्त दूती होनी चाहिये उत्तम मध्यम अधमके भेदसे यहभी कई भेदवाली हैं ।

सत्त्वसे उत्पन्नहुए विकार सात्त्विक कहाते हैं, भय वा हर्षसे चेष्टाका स्तंभ होजाना, पसीना आजाना, रुएँ खड़े होजाना, स्वरभंग होजाना, कंपित होना, विवर्णता हो जानी, विषाद वा मदसे । क्रोध दुःख वा हर्षसे नेत्रोंमें जल आजाना, सुख दुःखकी चेष्टाका ज्ञान न रहना प्रलयहै, यह भाव प्रेममें उदय होते हैं । कई कारणोंसे ग्लानि मानकर अपनी अमाननाका नाम निर्वेद है । व्यभिचारी होनेसे इनकेभी तेंतीस भेद होते हैं ।

रसके धर्म काव्यमें माधुर्य्य ओज प्रसाद यह तीन प्रकारके हैं, सुनतेही चित्त द्रवीभूत होकर आह्लादको प्राप्तहो इसका नाम माधुर्य है । मनके विस्ताररूप विकासका नाम ओज है, वीर वीभत्स रौद्र रसमें इसकी अधिकता है । जो श्रवण करतेही मनमें प्रवेश करजाय वह काव्य प्रसाद गुणवाला है ।

इसके आगे ध्वनि अर्थ लक्ष्य व्यंजना आदिके अनेक विषय चलते हैं परन्तु यहां अब प्रयोजनीय अलंकार विषय कहते हैं ।

शब्द और अर्थमें स्थिर रहने वाले शोभाके अतिशय करनेवाले जो रसादिके उपकारी हैं वे अलंकार कहाते हैं अलंकार शब्द और अर्थ दोनोंमें रहते हैं ।

दोहा—प्रथम शब्द याते कहैं, प्रथम शब्दके साज ॥
बहुरि अर्थके जानिये, अलंकार कविराज ॥ १ ॥
उक्तिभेदते होत हैं, अलंकार यह जानि ॥
वक्र उक्ति याते कही, द्वैविधि प्रथम बखानि ॥ २ ॥
कहै बात औरै कछू, अर्थ करै कछु और ॥
वक्रउक्ति ताको कहैं, श्लेष शुद्ध द्वै ठौर ॥ ३ ॥
वर्ण एकसे फिर जहाँ, अनुप्रास है सोय ॥
छेकविदग्धा वृत्ति करि, सो पुनि द्वै विधि होय ॥ ४ ॥

जहाँ बहुतसे वर्ण एकवार फिर आवैं वह विदग्धा अनुप्रासहै । अनेक व्यंजनका एकधा स्वरूपसे वा वारंवार अनेक प्रकार क्रमसे एक व्यंजनका वारवार समभावसे जो वर्तना है उसको वृत्त्यनुप्रास कहते हैं ।

दोहा—फिरि अर्थ पदयुत जहाँ, अर्थभेद नहिं कोय ।
सो लाटानुप्रास पुनि, भावभेदते होय ॥ १ ॥
एक शब्द बहु शब्दको, एकरु भिन्न समास ।
बरने वचन समासहू, पांच भांति सुप्रकाश ॥ २ ॥

जमकलक्षण ।

दोहा—अर्थ होय भिन्ने जहाँ, शब्द एक अनुहार ।
जमक कहत तासों सबै, भेद अनन्त विचार ॥ १ ॥

श्लेषलक्षण ।

दोहा—शब्द जोहि अर्थ अनेकको, रहै एकही रूप ।
श्लेष तहां सुश्लेष हैं, आठ भांति सुअनूप ॥ २ ॥
वर्ण वचन अरु लिंग पुनि, कहि विभक्ति पदकान्ति ।
भाषा अरु प्रत्यय प्रकृति, वरन आठ यहि भांति ॥ ३ ॥

चित्रलक्षण ।

दोहा—लिखवेहीकी चतुरई, उपजै भेद अनेक ।
जहां सुचित्र कवित्त है, बहुविध बन्धु विवेक ॥ १ ॥

अर्थालंकार ।

दोहा—उपमा औ उपमेय हैं, अलंकारके प्रान ।
तातें इनको प्रथमही, कहियत रूप बखान ॥ १ ॥
होय बड़ाई सम किये, जाके सो उपमानि ॥
जाको वर्णन कीजिये, सो उपमेय बखानि ॥ २ ॥
शब्द अर्थ समता कहैं, दोउनको जहिं ठौर ॥
नहिं कल्पित उपमान जहिं, सो उपमा शिरमौर ॥ ३ ॥
शब्द सनेही पाइयें, समता श्रौती सोय ॥
अर्थ बिनाहि आरथी, उपमाहि बिधि दोय ॥ ४ ॥
समता पद उपमेय पुनि, धर्म और उपमान ॥
चारो जहँ सो पूरणा, लोपहुता जान ॥ ५ ॥

जिमि जैसो मानोरु सो, भाषा श्रौती जान।
सम समान उपमा तुला, जोग आरथी आन ॥ ६ ॥
औरै जे समता कहैं, प्रगटति श्रौती हेत।
जे समझावैं अर्थसो, ते आरथी निकेत ॥ ७ ॥

लुप्ता।

दोहा—उपमा औ उपमेय पुनि, वाचकधर्म बखान।
एक दोय अरु तीन पुनि, लोपैलुप्ता जान ॥ १ ॥

प्रतिवस्तूपमा।

दोहा—समतासूचक पद जहाँ, रहै एक द्वै भांति ॥
सो है प्रतिवस्तूपमा, पदसमूहकी कांति ॥ १ ॥
जहँ लघुता उपमानकी, सो प्रतीप है भेव ॥
प्रथम निरादर कीजिये, पुनि कीजे उपमेव ॥ २ ॥
संशयमें जो सांचसी, तेहि विधिको उपमान ॥
अधिक होय उपमेयते, सो उत्प्रेक्षा जान ॥ ३ ॥
उपमा अरु उपमेयको, भेद परै नाहिं जानि ॥
समता व्यंग्यरहै जहां, रूपक ताहि बखानि ॥ ४ ॥
जहँ देखत उपमानको, सुधि आवे उपमेय ॥
ताही सो सुमिरण कहत, जे कवि जानत भेय ॥ ५ ॥
करि निषेध उपमेयको, जहँ थापै उपमान ॥
बहुविधि वाचक भेदते, ताहि उपह्नुति जान ॥ ६ ॥

जहँ संबंध बनै न तब, उपमामें विश्राम ॥
हेतु क्रिया करि दोप है, निदर्शना सुखधाम ॥ ७ ॥
अति अभेद जिय राखि जहँ, नहिं कहिये उपमेव ॥
उपमानै कहिये जहाँ, अतिशयोक्ति सो भेव ॥ ८ ॥
उपमानरु उपमेय पुनि, साधारण जेहि ठाउँ ॥
वाचक सब प्रतिबिम्ब है, सो दृष्टान्त नाउँ ॥ ९ ॥
अगले २ योग जहँ, प्रथम अधिक गुण होय ॥
मालादीपक कहत हैं, ताहि सबै कविलोय ॥ १० ॥
दीपकहीसों भव यह, नियत एकही होय ॥
उपमान उपमेयको, तुल्य योगता सोय ॥ ११ ॥
जहां अधिक उपमानते, कहियत है उपमेय ॥
सो व्यतिरेक बखानिये, ऊँच नीच गुण भेय ॥ १२ ॥

इनके चौबीस भेद होते हैं.

दोहा—कारणके न कहे बरनि, अधिकाईके हेत ।
कहीं कहीं कहिबे भेद है, आक्षेपा कहिदेत ॥ १ ॥
सो विभावना होय जहँ, कारन बिनही काज ।

विशेषोक्ति ।

सब कारन कारजनहीं, जानि विशेष सुभाज ॥ २ ॥
उक्तनिमित्ता अनुक्तनिमित्ता यह विभावनाके दो भेद हैं ।
दोहा—रूप अर्थनको योग है, अनुमानौ पुनि होय ।

संख्याक्रम चूकै नहीं, यथा संख्य है सोय ॥ १ ॥
जहां अर्थ सामान्यको, पोपन करे विशेप ।
पुनि सामान्य विशेषको, जेहिठाँ पोप न लेप ॥ २ ॥
सो अर्थान्तर न्यास है, और अर्थ जहँ होय ।
स्वधर्म विधर्म भेदकर, चारभांति है सोय ॥ ३ ॥
है न विरोध विरोधसो, बातन माहिँ लखाय ।
जाति क्रिया गुण नाम करि, सो विरोध दशभाय ॥४॥
जाति चारिसों तीनगुण, द्वै से क्रिया विरुद्ध ।
नाम नामहीसों बहुरि, यौ हैं दश विधि शुद्ध ॥ ५ ॥
रूप रहै जु सुभायकै, तिनको वर्णन होय ।
सुसुभावोक्ति जानिये, कृतिम जहाँ नहिं सोय ॥ ६ ॥

बहानेसे दोप वर्णन करनेका नाम व्याजस्तुति है, और अर्थके विना अर्थ जहाँ भला बुरा न हो उसको विनोक्ति कहते हैं जहां अर्थ बदले जाते हैं वह विनिमय अलंकार है सम और अर्थ भेदसे दो प्रकारका है ।

सहोक्ति लक्षण ।

एकारथ पद अर्थ है, कहै साथके जोर ।
जहाँ सहोक्ति जानिये, अलंकार निहि ओर ॥ १ ॥
बीती होनी बात जहँ, कहत प्रगटसो होय ।
भाव जहां कवि हृदयको, भाविक कहिये सोय ॥२॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ विहारीसतसईकी—

अकारादिअनुक्रमपूर्वक अनुक्रमणिका ।

अ.

अंग अंग प्रतिबिम्ब		...	५२०
अंग अंग नग	...	...	५२१
अंग अंग छवि	...	...	५३१
अंगुरिन	....	...	२०६
अजहुँ न आये	...	...	१२०
अजौं तर्‍योनाहीं	...	...	६३१
अतिअगाध	...	...	६०३
अधर धरत	...	...	६
अनत बसे	....	...	१८८
अनरस	...	...	३७५
अनियारे दीरघ		...	३७१
अनी बड़ी	...	...	६५८
अन्त मरैंगे	...	...	७०१
अपनी गरज	...	...	३५१
अपने अंगके	....	...	३०
अपने आँन	...	....	६८२
अपने गुहिनार	...	...	६६७
अब गति	...	...	५३६
अरतैं टरत	...	...	४५६
अरी खरी	...	...	१६२
अरुनचरन	...	...	५१२
अरुणसरोरुह	...	...	५७८
अरे परे	...	...	३८१
अरे परखो	...	...	६१५
अरे हंसया	...	...	७१०
अलिइन	...	...	२५१
अलि इन लोयनसे		...	२६०
अहे कहैन	...	...	१५०
अहे दहैंड़ी	...	...	२१३

आ.

आज कछू	....	...	१८७
आड़े दै आले	...	...	३८१
आप दृगौ	...	....	१८४
आगि लगि	....	...	३७१
आगे आन	....	...	२५९
आनन आम	...	...	५८२

इ.

इक भींगे	....	...	६०९
इत आवत	....	...	४१८
इतते उत	...	...	२८६
इन आँखियां	...	....	२७०
इहि आशा	...	....	६३१
इहि हैही	....	....	४७४
इहि कांटे	...	....	४७

उ.

उठि ठक ठक	...	...	१५६
उडकुडबाती	...	...	३१५
उडी गुर्डी	...	...	२५५
उदय अस्त	...	...	७२३
उनकी हितु	...	...	२८९
उनि हरकी	...	...	२८८
उयो शरद	...	...	२३७
उर मानिककी	....	...	५०२
उर लीन्हें	...	...	३१०
उर उरझ्यो	....	...	२८७

ऊ.

ऊँचे चितय	...	...	७३

ए.

एरी यह तेरी	...	...	७०

ऐ.

ऐंचंतसी	...	...	६३

ओ.

ओछे बड़े न	...	...	६००
ओठ उचै	...	...	२८२

औ.

औंघाई	...	....	३८३
औये भांति	...	....	४१५
औरे सब	...	...	७६
औरे ओप	...	....	८८
औरे गति	....	....	८१

क.

कंचन तनु	...	...	५२२
कञ्जनयनि	...	...	६०
कच समेट	....	....	५४३
कत लपटैयत	....	....	१९२
कत बेकाज	...	...	१६८
कत सकुचत	...	...	१९०
कनक कनक	...	...	६४७
कन दैबो	...	...	६५०
कपट सतर	...	....	१०५
कबकी ध्यान	...	...	६७
कर उठाय	....	...	५०३
करके मींड़े	...	....	४२२
करतु मलिन	...	...	५२५
कर फुलेलको	....	....	६४६

कोनु सुनै २९०
कौन भांति ६८७
क्यों बखिये २७५
क्योंहूं सब २७६

क्ष.

क्षणेक उधार ११०
क्षणेक छबीले २२६
क्षणे वाचना २४४
क्षण २ में ३१२

ख.

खरी भीर ५७
खरी पातरी २६७
खरी लसत ४९२
खरे अदब ३६१
खल बढ़ई २९४
खलित वचन २१९
खिंचे मान १०२
खेलन सिखये ४५८
खौरि पनच ४५३

ग.

गडे बडे १७६
गदरचना ५९६
गदराने तन २४८
गली अँधेरी २२१
गहली गरब ३६९
गहाकि गांस ३००
गहे न नेको ६४१
गह्यो अबालो ११९
गाढ़े गाढ़े ४१८
गिन्ती गनबे ४३१
गिरिते ऊँचे ६२५
गिरे कंप ५६२
गुनी गुना सब ६१०
गुरुजन ७०८
गोप अथाइन १५७
गोपिन संग १०
गोरी गदकारी ५४३
गोरी छिगुनी ४९६
गोधनतू ६२८
गोपिनके ६५४

घ.

घनघेरी ५७७
घर घर हिन्दु ७०४
घर घर डोलत ६०६
घाम घरीक ४८

च.

चकी जकीसी ४२९
चखरुचि २७९
चटक न छांडत ६९१
चलन न पावत ४९७
चम चमात ४६८

जात सयान २७६
जालरंध्रमग ३२६
जात जात वित ६७५
जात मरी.... ... ... २४९
जा मृगनैनी ७१४
जिन दिन... ... ... ६२०
जिहि निदाघ ३८३
जिहि भामिनि १७५
जुरे दुहुँनके ६१
जुवति जोन्हमें १६०
जेती सम्पति ५९३
जो तव होत ४७०
जोग जुगति ४५७
जो तिय तुम १९४
जो वाके तन ३१८
जो चाहै चट ३६५
जो शिर धारि ६१४
जोन्ह नहीं ४२०
जोन जुगति ५४७
जो कोऊ... ... ... ७
जौलों लखों १०४
ज्यों ज्यों... ... ... २२
ज्यों कर त्यों ५४१
ज्यों ज्यों बढति... ... [illegible]
ज्यों ज्यों पट ५६३
ज्यों ज्यों उझकि... .... ५५८
ज्यों ज्यों पावक १४८
ज्यों ह्वइहों... ... ... ६९१
ज्यों ज्यों आवत १५४

झ.

झमकि चढत २८५
झीने पटमें... ... ... ४८२
झुकि झुकि १५३
झूठे जात न ४६१

ट.

टटकी २४३
टुनिहाई १२४
टोरीलाई २३७

ठ.

ढाढी मन्दिर ७१२

ड.

डर न टरै २७७
डारे ठोढ़ी ४८५
डिगत पानि ६६०

ढ.

ढरे ढार २६३
ढीढयौ दे... .... २८

त.

तंत्रीनाद... ... ... ५९७

तजत अटान ७१५
तच्यो आँच ४२८
तजि तीरथ ६२१
तजी शंक... ... ... ४२९
तनक झूंठ ५४६
तनभूषण.... ... ... ५१४
तप न तेज ५८३
तर झुरसी ४०३
तरुणकोक १८०
तरवनि ९३
तिय कित ४६७
तिय तरसौंहैं ५७१
तिय निज हिय २९१
तिय तिथि १८
तियमुख ४४८
त्रिबली ८१
तीजपरब ३२२
तुरत सुरत १६९
तुम सौतिनि १०९
तुहूं कहत ९९
तू मानि मानि ७८
तू मोहन ३२४
तू रहि सखि २३२
तेह तरेरो ६९१
तो अनेक ६८३
तो तन अधिक ५३६
तोपर वारी ३२३
तोहीको छुट १०७
तोही निरमोही ३५२
तो लखि मो मन ५८६
तोरसराच्यो २६८
तो भलिये ६९५
तो लगिया ६७८
त्यो त्यों प्यासे ५३२

थ.

थाकी जतन २०६
थोरेई गुन ६८९

द.

दयोसुशीश ६८५
दच्छिन २०२
दहें निगोड़े ५००
दिन दश आदर ६३४
दियो अरघ २२३
दिये जु पिय ५६०
दिशि दिशि ५६८
दीठ वरत ... ... [illegible]
दीठ परोसिन ... ... [illegible]
दीठन परन ... ... [illegible]
[illegible] ... ... [illegible]
[illegible] ... ... [illegible]

दुःखबहायनु ३५५		**ध.**	
दुरित न ५९१		धनियह हैज ७१	
दुरे न निघर १२		धुरवा ३८६	
दुसह दुराज ६०५		ध्यान आनि ३४८	
दुसह बिरह ३९३		**न.**	
दुसह सौति ११२		नई लगनि २८४	
दुचितै चित ३४६		न करु न डर १८१	
दुरयो खरे ६४		नख रेखा... ... ... १७२	
दूजमुधा २५०		नखशिख.... ... ... २६७	
दृगानि लगत ४६२		नटिनशीश ८५	
दृग धरकौंहै ५४२		नभलाली १५२	
दृग मीचित २१३		नरकी औ नल ६२३	
दृग उरझत २७३		नये बिससिये ५९२	
देहदुलैया २६		नये बिरह १३८	
देखी सौनजुही ५१७		नवनागारि २१	
देखाजान ३४४		नहिं अन्हाय ५३	
देख्यो अनदेख्यो... ... ४४		नहिं पराग ६२९	
देखत कछु ४२		नहिं पावस ६३८	
देखत चुरै २९७		नहिं हरिलौ ३४१	
देवर फूल हने ४६		नहिं नचाय १०६	
देह लग्यो ३२०		नाक चढ़ २३४	
दोऊ चाहभरे २३६		नागरिविविध ३३१	
दोऊचोर २१६		नाचि अचानक ४०७	
दोऊ अधिकाई ३६२		नाम सुनतही ७०	
		नावक शरसे २३८	
		नाल हराति ४२७	

नासा मोरि ४५४
नाह गरज ६५१
नाह नहीं २४७
नाहिं नये ५६८
निज करनी ६९७
नितमति १
निपट लजीली २१८
निरखि २७
निरदइ नेह ३५४
नित संसौ ४२५
निशिअंधियारी १६१
नीको लसत ४४४
नीकी दई ६८७
नीच हिये ६०४
नाचिइ निच ४६५
नीठि नीठि २०८
नेको वह ३३८
नैक उतै ३२७
नैक न झरसी २१३
नैक न जानी ३०१
नैक न जानी परति ... ४२३
नैना नैक २६७
नैन दुमोहीं ४८३
नैन लगे ७३
न्हाय पहिरि ५०

प.

पग पग ५१३
पचरंग ४५२
पटकी ढिग १४
पटसौं पौंछ १७४
पट पाँखै ६३३
पतनारी माला ६७१
पति रतिकी ३६
पत्राही तिथि ४८१
पति ऋतु ३५९
पर तिय ६५१
पर्यो जोर २०७
पवन चले ६१
पल सौंहैं १७३
पलन पीक १६५
पलन प्रगट ४२६
पहुला भूषण ५२६
पहरत गी ४९३
पहुंचति ६२
पाय तरुनि ६४३
पायक हर ३८७
पावकसों १३७
पावस घन ५७१
पावस धरनि ३१९
पाहुने [illegible] ३६

पाय महावर ५०८
पायल पाय ७१६
पिय तियसों ४७८
पिय मन ३२५
पिय माननको १२३
पियके ध्यान ३४९
पिय विछुरनको ३५
पीठ दिये ५५१
प्रीतम दृग २११
पूसमास १३१
पूछेक्यों ७१
प्यासे दुपहर ६०१
प्रगट भये ६९९
प्रति बिम्बित ७०३
प्रगटी आज ४२७
प्रफुल हार ५४४
प्रलय करन ६६१
प्राणप्रिया १७१
प्रेम अडौले ७२

फ.

फिरि घरको ५६७
फिर फिर ९६
फिरि फिरि दौरत ४६३
फिर फिर चित २८१
फिरि २ बूझति ४१९
फिरतजु १८९
फिरि सुधि दै ३९१
फूले ४६६
फूली फाली १६५
फेरि कछू ३१९

ब.व.

वंधु भये ६८८
वडी कुटुमकी ४३८
वडे कहावत ४१४
वढे नहूजे ६४८
वढत निकस ५५६
वतरस २५४
वन वाटन ३९२
वनतनको २७२
वरन वास ४७६
वर जीते शर ४६०
वरजैं दुनी ५५०
बस सकोच २९२
वसै बुराई ६०७
वहकि वड़ाई ३७०
वहके सब ३९६
वहु धन लै ६५३
वह क्षिन इहि २३१
वाढत तो २३
वाम बाहु १४२

भौंवारि	६१७	मिलि परछाहीं	१६४
भूषण भार	५३७	मिलि मिलि	१३६
भृकुटी मटकन	४१४	मिलि बिरहन	५८०
भेटत बनत	१५६	मिसही मिस	१६३
भो यह ऐसो	७१७	मीत न नीत	६०४
भौंह ऊंचै	२१६	मुख उघारि	२१५
भौंहन त्रासति	४३	मुख रूखे	७१९
म.		मुँह धोवति	५२
मंगल बिन्दु	४५१	मुँह पखारि	५५३
मकराकृत	४	मुँह मिठास	२०४
मनमोहन	६७७	मूड़चढायो	६४२
मनु मनु हारन	४३६	मृगनैनी	१४१
मन न धरत	२३०	मेरीभवबाधा	१
मनु न मनावन	२२४	मेरेबूझे	९०
मरकत	१६६	मैंतोसौं	२२९
मरन भलो	४३३	मैंबरजीकै	५४०
मलिन देह	१४३	मैंहौंजान्यो	२५७
मारिवकी	४२४	मैंलखि	३९५
मरी डरी	४२०	मैंलैदयो	३०२
मरत प्यास	६३६	मैंतपाय	१९३
मानकरत	३६४	मोरमुकुट	३
मानहु मुख	२६	मोरचंद्रिका	६२७
मानहु विधि	५१५	मोसोंमिल	८६
मार सुमार	३८८	मोहितुम्हैं	६९३
मिलि चंदन	४५०	मोहूदीजै	७००

मोहनमूरति ६६३
मोहिंभरोसों ३३९
मोहिंळगावति १०१
मोहूसों १९९
मौहूसौत २६६
मोहिंदयो १८५
मोहिं करत ११
मोहूसौंतजि २६६

य.

यद्यपिचवायन ६५
यद्यपिसुन्दर २२७
यदपितेजरौहाळ १५१
यदपि नाहिं ७१८
यदपि लोग ४७३
यदपि पुराने ७१०
यश अपयश २६८
यह बसन्त ८९
यहमे तोहि ७५
यहबिरिया ६७२
यमकारी ६६७
यहां न चलै १७८
याके उर २९०
यह बिनशत ३००
या अनुरागी ६६४
या भव पारा ६८०
यों दळमलियत २२८
यों दळ काढें ६६२

र.

रंगराती ४०६
रंगी सुरति ९२
रंचन ५३२
रमन कह्यो २१०
राणित भृंग ५८६
रसभिजिये ५६४
रससिंगार ४५५
रवि वन्दों ६४९
रसकेसे १९८
रह न सकी ५८५
रहत नरन ७०२
रहि न सक्यो ५२१
रही चकित १८३
रही अचलसी ६८
रही रुकी ५८९
रही दहेंढ़ी २४१
रह्योमोह ३१७
रही लूट ३३२
रही पैन ३४०
रह्यो दीठ ५०७
रही गुढी १३२
रही पगार्ट २०१

रही फेरिमुहँ	...	...	८२
रहिहैं चंचल	....	...	१२९
रह्यो ऐंच	...	...	१२५
रह्यो बरोटे	....	...	१४५
राति द्योस	....	...	१०३
राधा हरि	...	....	२४५
रुक्यो सांकरी	...	....	५८७
रूपसुधा...	...	....	२२०

ल.

लई सौंहसी	...	...	३०९
लखि लौने	....	...	३२९
लखिगुरुजन	...	...	२५६
लखिदौरत	...	...	३०
लखि लखि	...	...	२२५
लगत सुभग	....	....	५८४
लगी अनलगी	...	...	५०५
लग्यो सुमन	...	....	७२२
लटुवालौं...	...	...	६७४
लपटी पुहुप	...	...	५९०
लटकि लटकि	...	....	२२२
लरिका लेबेके	...	...	२८३
ललित श्याम	...	...	४८७
ललनसलौने	...	...	१८६
ललन चलन	...	...	१३२
ललन चलनसुनि	...	...	७२२
लसत सेत	...	...	४७९
लसै भुरासा	....	...	४८०
लहलहाति	...	....	५०४
लहिसूने	....	....	३२१
लाई लाल	....	...	३४०
लागत कुटिल	....	....	३३०
लाज लगाम	...	....	२६९
लाज गरव	....	...	८४
लाज गहो	...	...	५५
लाल तिहारे	...	...	३५०
लाल अलौकिक	...	...	१९
लाल तिहारे	...	....	३०७
लाळन लहि	...	...	१८२
लिखनबैठि	...	...	५३४
लीनेऊसाहस	...	....	५२७
ले चुभकी	....	...	५५१
लोपे कोपे	...	...	६५६
लोभलगे	...	...	२६१
लोनेमुहँ ...	....	....	४७७

स.

सकत न तुव	...	...	३७७
सकुचि सुरत	...	...	३७
सकुचि सरकि	....	....	२५१
सकुचि न रहिये	...	...	३७८
सकै सताय	...	...	७२३

सखि सोहत ८
सखी सिखावत ७११
संगतिदोष... ... ... ६२६
संगति सुमति ६११
सघनकुञ्ज १५९
सघनकुञ्जछाया ४११
सतसैया ७२५
सटपटा ६६
सतरभौंह ९८
सदन सदन १९५
सनसूक्यो ९७
सनि काजल ३२८
समरस ३२
समि मोहन २६५
सम्पति केश ५९८
समैपलट ६९४
समै समै ६२४
सबै सुहायेई ४४७
सब अंगकरि ३८
सबै हँसत ६१२
सम्बन ग्रह ७०७
सबही नन ५६
[illegible] ४३९
[illegible] ६३२
[illegible] २१२

सहलसु ५१६
सहज सुचिक्कन ४५०
सहित सनेह २४०
सही रंगी ८७
सामासैन ७०५
सायकसम ४५६
सारी डारी ४६४
सालतहै ४८१
सीरे जतनन २८०
सुखसों वीती ३४५
सुघरसौतिवश ११२
सुदुतिदुराय ९१
सुनत पथिक ४३५
सुनि पगचुत २६९
सुभरभरचो १९६
सुरति न लाल ३११
सुरंग महावर १७१
सूर उदिततू ४८८
स्वेदसलिल १४
सैमितहासा २१४
सौनजुहीसी ५०१
सोनन मागत ४१३
सोनन सपने ४०९
सो त्रिगुरि तनु ४००
सोनन [illegible] ४०

सोहत धोती २२
सोहत अंगुठा ५११
सोहत संग ६१२
सोहत ओढे ५
सोहिहू ३६६
स्वारथ सुकृत ६३५

श.

शशिवदनी ७१२
शीतलता ६२०
शीश मुकुट २
श्याम सुरति ६५५

ह.

हँसि उतार २०४
हँसि ओठन ११४
हँसि हँसाय २६२
हँसि हँसि हेरत २१७
हठ न हठीली ५७४
हठि हित कारि १२०
हम हारी कै ६५७
हरषि नवीली ४९
हरि कीजत ६९६
हरि छवि २५८
हरि हरि २९९
हाहावदन ३७२
हित कारि ३०३
हिये और १२६
हुकम पाय ७०६
हेरि हिंडोरे २४९
हे हिय रहाति २७४
होमत सुख ३०५
हौं रीझी ३३५
हौं हीबौरी ४१६
ह्वांते ह्वां ४१७
ह्वै कपूर ५२३

इति अनुक्रमणिका समाप्त।

श्रीः ।

विहारी सतसई-सटीक ।

प्रथम शतकः ।

टीकाकारका मंगलाचरण ।

दोहा—वृंदाविपिनविहाररत, सकलसुमंगलमूल ।
बुध ज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ १ ॥
नँदनंदन शोभासदन, नटवर मदनगुपाल ।
मुरलीधर गिरिवर धरन, कुंजविहारीलाल ॥ २ ॥

अथ ग्रंथारम्भः ।

दोहा—मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोइ ।
जा तनुकी झाँई परे, श्याम हरित द्युति होइ १

सोई नागरि (चतुर) राधिका मेरे जन्म मरणकी बाधा (दुःख) हरणकरो, जिन राधिकाके शरीरकी झाँईमात्र पड़नेसे श्रीकृष्णकी (हरित) प्रफुल्लकांति होजाती है अर्थात् जिनकी झाँईमात्रसे श्रीकृष्ण प्रसन्न होजाते हैं, काव्यलिंग अलंकारहै [दोहा—हेतुसमर्थन युक्तिसों, काव्यलिंगको अंग, ह्यां भवबाधा हरनको, श्रीराधिका प्रसंग] अथवा जिन राधिकाके शरीरकी पीत झाँई पड़नेसे कृष्णके शरीरकी

कांति हरित होजाती है, प्रत्यक्षहै कि, नीलमें पीला मिल-नेसे हरा रंग होता है,यहां हेतुकअलंकार जानना [दोहा—हेतु सहित कारज जहां, कहैं हेतु कविराज। प्रिय प्रीतम रँग श्याम पिय, हेतु हरित रँग काज] अथवा जिन राधिकाके शरीरकी झाईंसे श्रीकृष्ण हरे होजाते हैं। झाईंका अर्थ झलक अथवा छाया है ॥

अत्युक्ति (राधा) सोंठ (नागरि) नागरमोथा (सोय) सोया यह तीनों मेरी भवबाधाको दूरकरो अर्थात् जिसके तनुपर झाईं पड़नेसे श्याम वर्ण पिटिका पड़गई हैं, यह तीनों पीसकर लगावे तो उसके शरीरकी (हरित) डहडही कान्ति होजाती है ॥ १ ॥

शीश मुकुट कटि काछनी,कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन बसो,सदा विहारीलाल॥२॥

शिरपर मुकुट कमरमें कछनी हाथमें मुरली हृदयमें मालावाले हे विहारीलाल! तुम सदा इस बनावसे मेरे हृदयमें निवासकरो, जैसे उपरोक्त अलंकार अपने स्थानको छोड़कर अन्यत्र नहीं रहते, इसीप्रकार आप मेरे हृदयके विना अन्यत्र न रहो। विहारीलालका अर्थ रहस्यलीलाके रसिक । जाति-अलंकार [दोहा—जातिसु जैसो जासुको, रूप कहैं तिहि साज। जो ह्यां प्रभु बानिक जुहो,कह्यो सु त्यों कविराज]॥२॥

मोर मुकुटकी चंद्रिका, यों राजत नँदनंद ।
मनुशशिशेखरकोअकस,कियशेखरशतचंद ३

मोरपंखके मुकुट धारण किये उस मोरपंखकी चन्द्राकार रेखासे नंदसुवन इसप्रकार शोभायमान होते हैं, मानों (शशिशेखर) शिवजीके मनकी (अकस) वैमनस्यता विचारकर कृष्णने अपने शिरपर सौ चन्द्रमा धारण किये हैं, तात्पर्य यह शिवने कामको दग्ध किया, कृष्णने उसका उत्तर दिया कि, जैसे तुमने जलाया वैसे हमने काम उपजाया चंद्र कामका सहायक है, इसकारण सौ चन्द्रमा धारण करके मानों सौगुणा काम उत्पन्न करेंगे ॥

असिद्धास्पदहेतूत्प्रेक्षाअलंकार [दोहा—जहां कछू कछु सो लगे, समुझत देखत उक्त। उत्प्रेक्षा तासों कहैं, पोन मनो विप युक्त ॥ तर्क मोरचंद्रिकानमें, शशि उत्प्रेक्षा जान । हेतु अकस असिद्धास्पद, अकस असिद्ध पद मान] ॥ २ ॥

मकराकृत गोपालके, कुंडल सोहत कान ।
धस्योमनोहियधरसमर,ड्योढीलसत निशान ४

मकरके आकारके कुंडल श्रीकृष्णके कानमें इसप्रकार शोभित होते हैं, मानों इनके हृदयरूपी भवनमें काम (स्मर) प्रवेश कर गया है, निशानरूपी द्वारपाल बाहर ड्योढीपर शोभा देते हैं, यदि कहो मनसे कामकी उत्पत्ति प्रसंग नहीं

घनता तो उत्तर यह है कि, मनसे उत्पन्न कामको आल-म्बनके विना स्थिति नहीं होती, सो आलम्बन नायिका अन्य स्थलमें होनेसे जव मन उसकी ओर जाकर सकाम होकर आया, तब प्रवेश कहा, यहां उक्तास्पदवस्तूत्प्रेक्षाअलंकार है । कुंडल वस्तु उक्त और निशानमें तर्क अर्थात् उत्प्रेक्षाकी है ॥ ४ ॥

सोहत ओढ़े पीतपट, श्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि शैलपर, आतप पर्‍यो प्रभात॥५॥

पीतवस्त्र धारण किये श्रीकृष्णके सलोनें (नमकीन) अंग ऐसे शोभित होते हैं; मानों नीलेरत्नके पर्वतपर प्रातः-कालमें (आतप) धूप पड़ीहो, उक्तास्पदवस्तूत्प्रेक्षा अलं-कार है । श्याम गात पट वस्तुमें नीलगिरि धूपकी उत्प्रेक्षा की है ॥ ५ ॥

अधर धरत हरिके परत, ओठ दीठ पट ज्योति।
हरित बाँसकी बाँसुरी,इन्द्रधनुष रँग होति ॥६ ॥

जिससमय श्रीकृष्ण (अधर) होठोंपर धारण करते हैं उस समय होठ आंख और पीतपटकी लाल काली पीली ज्योति पडती है उससमय हरे बाँस की बांसुरी इन्द्रधनुषके समान होजाती है । बांसुरी हरी ओठ लाल इत्यादि कईरंग मिलनेसे इन्द्रधनुषसी होती है । तद्गुण अलंकार है [दोहा—

अलंकार तद्गुण कहौं, औरे गुण गहिलेत। इन्द्रधनुप भइ बाँसुरी, तजि निज गुणसों हेत ॥ ६ ॥

कितीनगोकुलकुलवधू,काहि न केहि सिखदीन।
कौने तजी न कुलगली, ह्वै मुरली सुरलीन ॥७॥

हे सखि! कितनीही गोकुलमें कुलवधूहैं,किसने किसे शिक्षा नहीं दी, मुरलीके सुरमें लीन होकर किसने अपने कुलकी कान न त्यागदी । लीन—तन्मय । विशेषोक्तिअलंकार। [दो०—विशेषोक्ति कारज नहीं, कारणकी अधिकाय। सो ह्याँ शिक्षा कुलगली,रीति न रहत सुभाय ॥ ७ ॥

सखि सोहत गोपालके,उर गुंजनकी माल ।
बाहर लसत पियै मनो, दावानलकी ज्वाल॥८॥

हेसखि ! कृष्णके हृदयमें चौंटलियोंकी माला ऐसे शोभा देतीहै,मानो पीनेपर दावानलकी लपट बाहर निकलकर शोभा देतीहै, श्रीकृष्णका दावानल पान करना दशमस्कंधमें प्रसिद्धहै, कोई कहै कि, अमंगलवस्तुकी उपमा क्यों दी तो यह उत्तर है कि,सौतके हाथकी गुथी मालाको देख डाहसे सखी ने ऐसा कहा, उक्तास्पदवस्तूत्प्रेक्षाअलंकार[दोहा—उत्प्रेक्षामें अरु जहाँ, संभावन जहँ होय। वस्तु हेतु फलयय त्रिविध, मनु जनु पद तहँ जाय ॥ १ ॥ तहाँ वस्तु, उक्तास्पद अनु-

क्तास्पद जान । हेतु सफल सिद्धास्पद, असिद्धास्पद मान ॥ २ ॥ गुंजमाल यहि वस्तुमें, कारि संभावन ज्वाल । माल-उक्त उक्तास्पद, मनु पद प्रगट रसाल ॥ ३ ॥] ॥ ८ ॥

नितप्रति एक तहीं रहत, वैसवरण मन एक ।
चाहियत युगलकिशोरलखि,लोचनयुगलअनेक९

सदा एकही वयस वर्ण मनके द्वारा नितप्रति दोनों एकत्रही रहतेहैं इस युगल तरुण (राधाकृष्ण) की जोडी देखनेको तो अनेक नेत्रोंके जोड़े चाहिये, कारण कि,दो नेत्रोंसे यह शोभा नहीं देखीजाती,अथवा सखी कहती है आँखें मेरी दो हैं, अनेक चाहियें, समालंकार । [दोहा—उचित बात ठहराइये, सम भूषण तिहि नाम । ह्यां सबविधि सम जानिये, कविवर श्यामा श्याम ॥ १ ॥] ॥ ९ ॥

गोपिन सँग निशि शरदकी,रमत रसिक रसरास।
लहा छेह अति गतिनकी,सबन लखे सब पास१०

गोपियोंके साथ शरदृऋतुकी रात्रिमें(रसिक) रसिया कृष्ण सरस अनुरागसे रासमें क्रीडा करते रहे (लहाछेह) शीघ्रताके कारण अनेक गतियोंके सेवनसे सबने श्रीकृष्णको सबके पास देखा। विशेषालंकार[दोहा—एक वस्तु बहुठौरमें,जहँ वर्णनकी होय । सो विशेष भूषण कहैं, जानतहैं सबकोय ॥१॥]॥१०॥

मोहिं करत कत बावरी, किये दुरावदुरैन ।
कहेदेत रँग रातके, रँगनिचुरतसेनैन ॥ ११ ॥

पति अन्य कहीं रमण करके आये, और अपनी प्रियासे छिपाव किया, तब उसने कहा भला मुझे क्यों बावरी बनाते हो, यह छिपाव कियेसे न छिपेगा, लालरंग निचुरतेसे नेत्रही रातका रंग कहदेते हैं, अर्थात् रातके जागनेकी लाली विद्यमान है, काव्यलिंग । रंग निचुरते नेत्रने रातका रंग दृढ किया ॥ ११ ॥

बाल कहा लाली भई, लोयन कोयन माँहि ।
लाल तिहारे दृगनकी, परी दृगनमें छाँहि ॥ १२ ॥

प्रश्नोत्तर । कृष्ण बोले हेबाला ! तुम्हारे नेत्रोंके कोयोंमें लाली कैसी होरहीहै, सखी बोली प्यारे और कुछ नहीं तुम्हारे नेत्रोंकी लालीकी परछाहीं मेरे नेत्रोंमें पड़ीहै, उत्तरालंकार छेकानुप्रास प्रत्युत्तरसे प्रसिद्धही है ॥ १२ ॥

दुरै न निघर घटौदिये, यह रावरी कुचाल ।
विषसी लागतहै बुरी, हँसी खिसीकी लाल ॥ १३ ॥

(निघर घटौदिये) दुलखनेमें, ना ठिठाई करनेमें यह आपकी कुचाल नहीं छिपती, हेलाल! (कृष्ण) खिसियानेकी हँसी विषके समान बुरी लगती है, पूर्णोपमा । [दोहा—समता

समवाचक धरम, वर्ण चारि इक ठौर । शशिसों निर्मल मुख यथा, पूरण उपमा गौर ॥] हँसी उपमेय, विष उपमान, बुरा लगना धर्म ॥ १३ ॥

स्वेदसलिल रोमांच कुश, गहि दुलहिन असनाथ। दियो हियो सँग नाथके, हाथलियेही हाथ ॥१४॥

गंधर्वविवाह सात्त्विकभाव हे सखि! विवाहके समय दूलह और दुलहीने (स्वेद) पसीनारूपी जल और रोमांचरूपी कुश ग्रहण कर हाथमें हाथ लियेही अपना हिया स्वामीके संग कर दिया। विवाहमें पाणिग्रहण होतेही दोनोंने मन दिया [आसीद्वरः कंटकितः प्रकोष्ठे स्विन्नाङ्गुलिःसंववृते कुमारी] रूपक अलंकार ॥ १४ ॥

कहत न देवरकी कुवत, कुलतिय कलह डराति ॥ पंजरगत मंजार ढिग, शुकलौं सूखति जाति १५

(कुलतिय) कुलवधू देवरकी कुटिल बातें नहीं कहती क्लेशसे डरती है बिलावके ढिग बैठेहुए पींजरेमें पड़े तोतेके समान सूखती जातीहै, दृष्टान्तालंकार [दोहा—सम बिम्बनि प्रतिबिम्ब गति, है दृष्टान्त सुढंग । पंजरगत मंजारढिग, शुक वर्णन कविरंग] ॥ १५ ॥

पारयो शोर सुहागको, इन बिनही पिय नेह ॥ उन दोही अँखियाँकिकै, कैअलसोंही देह॥१६॥

हे सखी! इसने पियाके स्नेह विनाही सुहागका शोर डाला, अर्थात् प्रीति प्रसिद्ध की, उनींदी आँखों अथवा अलसानी देहसे यह बात जानी जातीहै। यदि कहो कि प्रीतमके नेह बिन सुहाग प्रसिद्ध नहीं होता, तो उत्तर यह कि, यह नायकाकी निज सखीकी वचन सौतकी सखीसे, है कि इसकी प्रीतिको किसी सौतकी कुदृष्टि न लगै। पर्यायोक्ति। [दोहा— पर्यायोक्ति जहां नई, रचनासों कछु बात। साधै इष्ट बनायकै, निज छल नहीं लखात ॥] ॥ १६ ॥

छुटी न शिशुताकी झलक,झलक्यो यौवन अंग।
दीपति देह दुहूँन मिलि, दिपति ताफता रंग १७

वालकपनकी झलक नहीं छुटी, कि अंगमें यौवन झलका, दोनोंके मिलनेसे देहकी दीप्ति ताफतारंगके समान चमकतीहै, वयसान्धि वर्णन. ताफता—धूपछांहको कहतेहैं जैसे इसमें ताने बानेके दोनों रंग चमकतेहैं इसप्रकार उसके अंगमें बालापन और यौवन झलकताहै। वाचकलुप्तोपमा।[दोहा—उपमे यरु उपमा धरमा, वाचक कह तहँ पाठ। इकबिन द्वैबिन तीनबिन, सो लुप्तोपम पाठ] ॥ यह जयपुरी हइयहै ॥ १७ ॥

तिय तिथि तरणि किशोर वय,पुण्यकालसमदौन।
काहू पुण्यनि पाइयत, वैस संधि संक्रौन ॥१८॥

सखीका कृष्णसे अन्य सखीका रूप कहना, वह सखी तिथिहै तरुण अवस्था सूर्य है, पुण्यकाल समान दोनों अवस्थाहैं, कोई किसी पुण्यसेही अवस्था और संक्रांतिकी संधि पाताहै, अर्थात् ऐसे समय तियाका मिलना भाग्यसे होताहै जब कि, बाल अवस्था छूटकर तरुणाई आती हो, सूर्य राशि छोडकर दूसरीमें जाताहै यह संक्रान्तिका पुण्यकालहै सविषय सावयव रूपकालंकार। [दोहा—रूपक सविषय सावयव, सकल वस्तु जुवखान। रूप कीजिये ह्यां वयहि, अंग संक्रमन जान॥] ॥ १८॥

लालअलौकिक लरिकई,लखिलखिसखीसिहाँति
आज कालमें देखियत, उर उकसोंहीं भांति १९

हे कृष्ण! उस सखीकी अलौकिक लोकोत्तर लरिकाई देखकर सखी प्रसन्न होतीहै, कारण कि आज कलमेंही उरोज उकसेसे दीखनेवालेहैं। लोकोक्ति अलंकार [दोहा—लोक कहन वर्णन जहां, लोकोक्ति कहि ताहि। आजकाल यह लोककी, कहन प्रसिध चितचाहि॥] ॥ १९॥

अपने अँगके जानिकै, यौवन नृपति प्रवीन ॥
स्तन नयन नितम्बको, बडो इजाफा कीन ॥२०॥

चतुर यौवन राजाने अपने (अंगके) सहायक जानकर

कुच, मन, नेत्र (नितम्ब) कटिपश्चाद्भाग इनकी अधिकतर वृद्धि की। हेतूत्प्रेक्षालंकार ॥ २० ॥

नवनागरि तनु मुलक लहि, यौवन आमिल जोर।
घटि बढिते बढिघटि रकम, करी औरकी और २१

यौवनरूपी (आमिल) हाकिमने नवनागरीका शरीररूपी देश पाकर, अपने बलसे घटी बढी वस्तुकी बढा घटाकर और की और ही करडाली, अर्थात् लरिकाईको निकालदिया, कमरको घटादिया, आंखें, केश, स्तन, नितम्ब, चतुराईको बढादिया, स्वाभाविक चेष्टा चाल चलनको औरका औरही करदिया। सविषयसावयवरूपकालंकार ॥ २१ ॥

ज्यों २ यौवन जेठदिन, कुचमितअतिअधिकाति
त्यों२ क्षण२ कटिक्षपा, क्षीण परत नित जाति २२

जैसे जेठके महीनेमें दिनका प्रमाण बढता है तैसे यौवनके आनेसे कुचोंका प्रमाण बढताहै, जैसे २ जेठके महीनेकी रात घटतीहै त्यों त्यों उसकी कमर घटती जातीहै, अति अधिकात का भाव यह कि, यौवनसे स्तन बढे और स्तनसे शोभा बढी। तद्रूपरूपकालंकार ॥ २२ ॥

बाढत तो उर उरज भर, भर तरुणई विकास ॥
बोझनि सौतनिके हिये, आवत रूंध उसास २३

तेरा हृदय कुचोंके बोझ और युवावस्थाके खिलनेकी चमकसे बढताहै- इन बोझोंसे सौतोंके हियेमें घुटकर श्वास आताहै । असंगतिअलंकार ॥ २३ ॥

भावक उभरोहों भयो, कछुक पर्‍यो भरु आय ॥
सीपहराके मिस हियो, निशादिन हेरतजाय २४

हृदय थोडासा एक ऊँचासा हुआ और कुछेक बोझ आकर पड़ा, सीपके हारके बहानेसे छाती रात दिन देखते जायहै, भरु—बोझ । पर्यायोक्ति । [दोहा—छलकर साधिय इष्ट जहँ, पर्यायोक्ति विशिष्ट । सीपहराके मिस हियो, लखति सुसाधति इष्ट] ज्ञातयौवनामुग्धाहै ॥ २४ ॥

देह दुलहैयाकी बढै; ज्यों ज्यों यौवनज्योति ॥
त्योंत्यों लखि सौतैं सबै, वदन मलिनद्युतिहोति २५

ज्यों ज्यों दुलहिनकी देह बढतीहै, त्यों२ यौवनकी ज्योति बढती है, तैसे तैसेही देखकर सौतोंके मुखकी कांति मलीन होतीहै । नवोढा मुग्धा । उल्लासालंकार [दोहा—इकके गुणसे होय जहँ, औरहि दोष उलास । दुलहीके गणते बढ्यो, सौतिन दोष प्रकास ॥] ॥ २५ ॥

मानो मुख दिखरावनो, दुलहिन करि अनुराग ॥
साससदन मन ललनहूं, सौतिन दियो सुहाग २६

मानो मुख दिखानेके वहानेसे प्रेमकरके दुलहीको सासने घर, पतिने मन, और सौतोंने सुहाग अर्थात् पतिका प्यार दियाहै, प्रसिद्धहै कि, नई वहूको मुख दिखरावनी दीजातीहै। हेतूत्प्रेक्षालंकार ॥ २६ ॥

निरखि नवोढा नारि तनु,छुटत लरकई लेस ॥
भो प्यारो प्रीतम तियन,मानहुँ चलत विदेस॥२७

नवोढा स्त्रीका शरीर देखकर लरिकाईका लगाव छूटने लगा। तव प्रियतम स्त्रियोंको इसप्रकार प्यारा लगने लगा मानो परदेशको चलताहै,परदेश जातेसमय पुरुष वहुत प्रिय लगताहै । हेतूत्प्रेक्षा ॥ २७ ॥

ढीठो दै वोलति हँसति,प्रौढ विलास अप्रौढ ॥
त्योंत्योंचलतनापियनयन, छकयेछकीनवोढ २८

यह सखी ढिठाई देकर वोलती और हँसती है इसकी लीला प्रौढाकीसीहै,औरयह प्रौढा नहीं है,जैसे२यह लीला करतीहै तैसे २ प्रीतमके नयन इसकी ओर लगनेसे चलायमान नहीं होते, यौवन रूपकी मतवाली नवोढाने मतवाला कियाहै।स्वभावोक्ति[दोहा–मृषा मृषा वातसे, स्वभावोक्ति पहिचान। लीला वोलन हँसनकी, प्रिय स्वभावमें मान]॥ २८ ॥

चालेकी वातें चलीं, सुनत सखिनके टोल ॥

गोयेहू लोचन हँसति, बिहँसत जात कपोल २९॥

सखियोंके समूहमें गौनेकी बातें सुनकर आंखें छिपाकर भी हँसती है, और गाल हँसीसे मानों मुसकुराते जातेहैं। स्वभावोक्ति। छलिता कामामुग्धाहै ॥ २९ ॥

लखि दौरत पियकर कटक, वास छुडावनकाज॥
बरुनी बन दृगगढनिमें, रही गुढोकरि लाज ३०

देखकर प्रीतमका हाथरूपी कटक जो वस्त्र और ठौर छुटानेके कामको दौडताहै, उस समय बरौनियोंके वन और नेत्ररूपी दुर्गमें मानो भाजकर लाजने वास कियाहै। सुरतके समय लाज मानों पलकोंके बालोंमें छिपी। सविषय सावयव रूपक ॥ ३० ॥

दीप उजेरहू पतिहि, हरत वसन रतिकाज ॥
रही लपटि छबिकी छटनि,नेकौ छुटी न लाज ३१

दीप उजेरेहीमें जब पतिने रतिके निमित्त वस्त्र हरणकिये, तबभी वह छबिकी छटाकी ज्योतिसे लिपटीही रही नेकभी लाज न छूटी इसकारण पतिका यत्न न पूरा हुआ। विशेषोक्ति [दोहा—विशेषोक्ति कारज नहीं, कारणकी अधिकाय। निलज करनको यत्न किय, लाज न छूटन पाय] ॥ ३१ ॥

समरस समर सँकोचवश, विवसन ठिकुठहराय।

फिरिफिरिउझकतिफिरिदुरति, दुरिदुरिउझकतिजाय

समान गुणवाले काम और संकोच (लाज) के वशसे अवश हो ठीक नहीं ठहराती, फिर फिरकर झाँकतीहै, फिर छिपतीहै फिर आके छिप २ कर झाँकतीहै, आशय यह कि, प्रीतम मुझे न देखें न प्रीतमके देखतेमें कोई मुझे देखे। यमकालंकार लाटानुप्रास[दोहा—वहै शब्द फिरि फिरि परै, अर्थ और ही और। सो यमकानुप्रासहै, भेद अनेकन ठौर॥१॥ एक शब्द बहुवार जो, सो लाटानुप्रास। तात्पर्यते होत है, और अर्थ प्रकास २॥] ॥ ३२ ॥

करे चाहसों चुटकिकै, खरे उडोहै मैन ॥
लाज नवाये तरफरत, करत खूंदसी नैन ॥३३॥

मैंने अर्थात् कामदेवने चाहसे चुटकाकर उड़ते वा उटतेहु येसे खडे किये, लज्जाके नवाये पर खुंदीसी करतेहुए नेत्र तडफडाते हैं। इसमें नेत्रोंको घोडेके समान निरूपित कियाहै उन्हें कामरूपी चाबुककी चाहसे चाबुक मार उटा हैं परन्तु लाज झुकादेतीहै चुटकीके चाबुकका चटाका करके खुदी खूँदनीहुई चाल अथवा पैरमें नस चढजानकी चाल, उपमान लुप्तालंकार [दोहा—नैन यहां उपमेय हैं, सो वाचक परमान। खुंदधर्म हय ना कह्यो, लुप्त यह उपमान]॥३३॥

छुटी न लाजन लालचौ, प्यौलखि नैहर गेह ॥
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच सनेह ॥ ३४ ॥

नैहरके घरमें पियाको देखकर न तो लाजही छुटी; और न लालचही छूटा, संकोच और सनेहसे भरेहुए नेत्र आगे सटपटाते रहे, पर्यायोक्तिअलंकार ॥ ३४ ॥

पिय बिछुरनको दुसह दुख, हरषजात प्यौसार ॥
दुर्योधनलौं देखियत, तजत प्राण इहिवार ॥ ३५ ॥

पियाके बिछुरनेका महादुःख है; और प्यौसार माके जानेका महासुखहै, इस समय दुर्योधनके प्राण छुटनेकीसी दशा होरहीहै दुर्योधनका मरण हर्ष शोकके मध्यमें था । अथवा इहिवार नाम यह बाला दुर्योधनके समानहै, पहलेमें उपमेय लुप्ता और दूसरेमें पूर्णोपमा ॥ ३५ ॥

पति रतिकी बतियां कहीं, सखी लखी मुसकाय ॥
करिकै सबै टलाटली, अलीं चलीं सुख पाय ॥ ३६ ॥

पतिने जो रतिकी बातें कहीं, सो प्यारीने सखीको मुसकाकर देखा, तब सब आली टालाटाली करके सुखपाय घर चलीं पर्यायोक्ति ॥ ३६ ॥

सकुच सुरत आरंभही, बिछुरी लाज लजाय ।
ढरकि ढार ढुरि ढिगभई, ढीठ ढिठाई आय ॥ ३७ ॥

संकोच कामकेलिके आरंभहीमें बिछुरगई जातीरही लाज से लज्जित होके लुढकनेकी भाँति प्रसन्न होकर निर्लज्ज ढिटाई मानो प्रियाके निकट आकर स्थितहुई, वृत्ति अनुप्रास [दोहा—कहुँ सारि वर्ण अनेककी, परै अनेकन बार। एकहिकी आवृत्ति कहुं, वृत्ती दोइप्रकार] ॥ ३७ ॥

सब अँग करि राखी सुघर, नायक नेह सिखाय।
रसयुत लेति अनन्त गति, पुतरी पातुरराय॥ ३८॥

नायक (संगीतादि सब भेदके ज्ञाता) नेहने सिखाकर उसें सब अंगसे चतुरकर रक्खी है अनुरागके साथ अनन्तगति लेती है वह नृत्य करनेवालीयोंकी सरदारहै सन्निपय सावयव रूपक ॥ ३८ ॥

बिहँसि बुलाय बिलोकउत, प्रौढतिया रसघूमि।
पुलकि पसीजति पूतको, पियचूम्यो मुखचूमि ३९

सौतके बेटेका मुख पतिने चूमा तब प्रौढतिया रसमें घूमि मत्त होकर उसे देख हँसकर बुलाय उस पियके चूमे पूतके मुखको चूमकर पुलकितहो पसीजी सात्विकभाव असंगति अलंकार [दोहा—हियमें काम प्रकाशतें, चहिये पियमुख चूमि। संगति तज प्रौढा सुवन मुख चूम्यो रसघूमि] ॥ ३९॥

सोवत लखि मनमान धर, ढिग सोयो प्यौ आय।

रहीसुपनकीमिलनामिलि,पियहियसोंलिपटाय४०

प्यारीको सोया देखकर पतिमानसे उसके निकट आ सोया उससमय स्वामीको हृदयसे लगाकर प्यारी नींदकी मिलनसे मिलरही पर्यायोक्ति ॥ ४० ॥

त्रिवलीनाभि दिखायके,शिरढकिसकुचिसमाहि।
गलीअलीकी ओटह्वै,चलीभलीविधि चाहि॥४१॥

उदरकी त्रिवली और नाभि दिखाके शिरढक सकुचमें आके गलीमें आलीकी ओटमें प्यारी पियाको भलीप्रकार देखकर चली स्वभावोक्ति अलंकार ॥ ४१ ॥

देखत कछु कौतुक इतै, देखो नेक निहारि ॥
कबकी इकटक डटिरही,टटियाअँगुरिनिफारि४२

सखी बोली प्यारे देखतेहो कुछ कौतुक तनक इधर निहारके तो देखो तुम्हारी प्यारी अँगुरीसे टट्टीको फारकर कबसे टकटकी लगाये अटकरही है स्वभावोक्ति ॥ ४२ ॥

भौंहनि त्रासति मुख नटति,आँखिनसोंलपटाति ।
ऐंच छुरावत कर इची, आगे आवति जाति॥४३॥

भौंहसे डरती है,मुखसे नाहीं करती है,अँखियासे लिपटती है, खैंचकर छुडावती है परन्तु खिंचीहुई स्वामीके पास आती जाती है, स्वभावोक्ति ॥ ४३ ॥

देख्यो अनदेख्यो कियो, अँग अँग सबै दिखाय।
पैठतिसी तनुमें सकुचि, बैठीचितहि लजाय॥४४॥

सखी तुमने देखा कि, प्यारीने अपना सब अंग अंग दिखाकर हमारा देखा अनदेखा किया, सकुचाकर शरीरमें पैठती हुईसी अपने मनको लजाकर बैठी स्वभावोक्ति अलंकार अप्राकृतगुप्ता ॥ ४४ ॥

कारे वर्ण डरावनो, कत आवत इहि गेह ॥
कै वा लख्यो सखी लखे, लगै थरहरी देह ॥४५॥

कृष्णको देख प्यारी बोली सखी कारावर्ण डरावनाहै इस घरमें क्यों आवै है? सखी मैंने कईवार देखा कि इसके देखने से मेरे शरीरमें कपकपी लगतीहै;व्याजोक्ति [दोहा—व्याजवचन कछु कह जहाँ, मनको भाव दुराय । व्याजोक्ति जैसे यहां, श्याम वर्ण डर पाय] ॥ ४५ ॥

देवर फूल हने जु शिशु, उठी हर्षि अँगफूल ॥
हँसी करत औषधि सखिनि, देह ददोरनि भूल ४६

सखी पडोसिनसे बोली कि, मेरे बालक देवरने जो मेरे फूल मारे अथवा फूलोंकी कलीमारी सो मैं हर्षउठी और अंग फूलिआये सात्विक भाव हुआ सखियां देहके ददोरोंसे भूलकर औषध और हँसी करतीहैं फूल लगनेमें अंग फलके और ददोरे पडे ॥ ४६ ॥

इहि काँटे मो पाय लगि, लीनी मरति जिवाय ॥
प्रीति जनावति भीतिसों, मीत जु काढ्यो आय ४७

सखी इस कांटेने मेरे पांवमें लगकर मुझे मरतेसे जिवालिया सखी सखीसे बोली देखो इसकी बातें इसके प्रीतमने जो आनकर कांटा काढा इसकारण यह डरसे प्रीति जनाती है विभावनालंकार [दोहा-कारज बनै विरुद्धते, विभावना विस्तार। कांटेते जीवन भयो, यह विरुद्ध निरधार] ॥४७॥

घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलिपुंज।
यमुनातीर तमालतरु, मिलति मालती कुंज ४८

प्यारे यहां एक घरी ठहरकर घाम (धूप) निवारण करो सुन्दर भौरोंके झुंड यहां गूँजरहे हैं, और तमालवृक्षोंमें चमेलीकी कुंजें मिलरही हैं. आशय यह कि, एकांत ठौर है गूढोक्ति [दोहा-गूढवचन कहि भाव निज, प्रगट करत जो तीय। गूढोक्ति सो जानिये, रसिकनको कमनीय] ॥ ४८ ॥

क्रिया विदग्धा ।

हरषित बोलीलखिललन, निरखिअमिलसँगसाथ
आंखनहीमें हँसिधस्यो, शीश हिये पर हाथ४९॥

हे सखी प्यारी! अपने संगमें अनमिल समूह देखकर प्यारे-को देख प्रसन्न हुई और बोली नहीं आँखोंहीमें हँसकर शिर

और छातीपर हाथ रक्खा. तात्पर्य यह कि, प्रणामकर कहा तुम मेरे मनमें बसतेहो मैं तुमसे रातको मिलूँगी सूक्ष्मालंकार [दोहा—इंगित हावनसों जहां, मनको भाव बताय। सो सूक्ष्मा लंकारहै, गुणियनको सुखदाय] ॥ ४९ ॥

न्हायपहरिपट उठ कियो, बेंदी मिस परणाम ।
दृगचलायघरको चली, बिदाकिये घनश्याम ॥५०

प्रियाने स्नानकर वस्त्र पहर बेंदीके मिससे प्रणाम किया नेत्र मटकाय अपने घरको कृष्णको बिदाकर चली, पर्यायोक्ति ५०

चितवत जितवत हिताहिये, किये तिरीछे नैन ।
भीजे तनु दोऊ कँपे, क्यों हू जप नियरेन ॥५१॥

दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरेको तिरछे देखकर हृदयका हित जनाते हैं भीजे शरीरसे दोनों कांपते हैं परन्तु किसी भांति जप संपूर्ण नहीं होता पूर्वार्द्धमें जाति उत्तरार्द्धमें विशेषोक्ति अलंकार है ॥ ५१ ॥

मुखधोवत एँडीघसति, हँसति अनँगवति तीर ।
धसतिनइन्दीवरनयनि, कालिन्दीके नीर ॥५२॥

मुँह धोती और एँडी घिसती है किनारेपर वह कामवती स्त्री खेलकरती है परन्तु वह नीलकमललोचनी यमुनाके जलमें प्रवेश नहीं करती जानि और पर्यायोक्ति ॥ ५२ ॥

नहिं अन्हाय नहिं जायघर, चित चहुँट्यो तकितीर
पराशिफुरहरी लेफिराति, विहँसाति धसतिननीर ५३

नतो स्नान करतीहै न घरजाती है प्यारेको तकनेसे तीरपरही मन लगाहै, जलको छूतेही फुरहरीले पीछेको हँसकर हटती है पानीमें नहीं घुसती पर्यायोक्ति चहुँट्यो-चुभगया ॥ ५३ ॥

चितईललचोंहैं चखनि, डटि घूँघट पटमांहि ।
छलसोंचलीछुवायके, क्षणक छबीली छांहि ५४॥

लाजभरे नेत्रोंसे देखा घूँघटके पटमें डटकर प्यारीने फिर छलसे क्षणेक अपनी छबीली छाँह छुआके चली- आशय यह कि प्रीतमकी छाँहसे छांह छुआके चली इसमें यह दिखाया कि मैं तुम्हारे साथ छांहके समानहूं स्वभावोक्ति ॥५४॥

लाजगहो बेकाजकत, घेररहे घर जाहिं ।
गोरस चाहतफिरतहो, गोरस चाहत नाहिं॥५५॥

हे कृष्ण! तनकतो लाज गहो विना काज हमें क्यों घेर रहे हो, हम अपने घरजाँय तुम बातोंके रसको अथवा इन्द्रियोंके रसके चाहते फिरोहो गोरस दूध दही नहीं चाहतेहो यमकालंकार [दोहा—पृथक २ हों अर्थ जहँ, पदहों एक समान । सो यमकालंकार है, कविजन करत बखान] ॥५५॥

सबही तनु समुहाति क्षण, चलति सबनिदै पीठ।
वाही तनु ठहराति यह,किबलनु मालौं दीठ ५६

क्षणमात्र सबहीकी ओर देखती है और क्षणमें सबहीकी ओर पीठ दे चलतीहै, परन्तु यह किबलनुमासी दृष्टि उन्हीं (कृष्ण) की ओर ठहरतीहै, किबलनुमा सदा पश्चिमहीकी ओर रहताहै पूर्णोपमा, दृष्टि उपमेय किबलनुमा उपमान, लौं वाचक, समुहातिधर्म है ॥ ५६ ॥

खरी भीरहू भेदिकै, कितहूं ह्वै इत आय ।
फिरै दीठ जुरि दीठसों, सबकी दीठ बचाय॥५७

प्यारीकी दृष्टि कितहूं होय बहुतसी भीरको भेदकर भी इधर आती है और सबकी दृष्टि बचाकर स्वामीकी दृष्टिसे प्रियाकी दृष्टि मिलकर फिरती है विभावनालंकार ॥ ५७॥

कहतनटतरीझतखिजत,मिलतखिलतलजियात।
भरे भौनमें करतिहै, नैननिमें सबबात ॥५८

कहते हैं, नाहीं करते हैं, प्रसन्न होने, खीजने, मिलने, खिलने और लजातेहैं, भरे घरमें सब बातें नेत्रोंमेंही करते हैं. आशय यह कि, प्यारेने चलनेका संकेत किया प्यारीने नाहीं करी, इस भावसे प्यारे रीझे, तब प्यारी खीजी, फिर मिल-कर नायक प्रसन्न हुए, प्यारी लजाई प्रवांडमें कारकदीपक

अलंकार [दोहा—जहां कहूं इक वाक्यमें, भाव अनेक दिखाहिं। कारक दीपक कहतहैं, कविजन ताहि सराहिं] उत्तरार्द्धमें विभावना है ॥ ५८ ॥

दीठ बरत बांधी अटनि; चढि आवत न डरात।
इत उतते चित दुहुँनके, नटलों आवतजात ५९॥

दोनों ने अटारीपरसे दृष्टिकी रस्सी बांधी है, उसपर बराबर चढ़ते आते हैं डरते नहीं इधर उधरसे (उनरस्सोंपर) दोनोंके मन नटके समान आते जाते हैं, रूपकालंकार पूर्णोपमालंकार है ॥ ५९ ॥

कंजनयनि मज्जन किये, बैठी व्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिचदीठदे, चितवति नंदकुमार ६०

कमललोचनि स्नानकर बैठकर बार व्योरने (सुलझाने) लगी, परन्तु बालोंमें अंगुलियोंके लगानेमें जो छिद्र होते हैं उन छिद्रोंमें दृष्टि लगाकर कृष्णको देख रही है पर्यायोक्ति ॥ ६० ॥

जुरे दुहुँनके दृग झमकि, रुके न झीने चीर।
हलकी फौज हरोल ज्यों, परति गोलपर भीर ६१

दोनोंके नेत्र झमककर जुरे झीने वस्त्रमें रुके नहीं. जैसे सेनाकी हलकी हरावलके समान गोलपर भीर पड़ती है.

हरौल सेनाका अग्रभाग प्यारीके नेत्र राजाकी सेना, घूँघटपट हरौल, और प्रियके नेत्र दक्षिणी कटक दृष्टान्तालंकार॥ ६१॥

पहुँचति डटि रण सुभटलौं, रोंकि सके सब नाहिं लाखनहूकी भीरमें, आँखि वहीं चलिजाहिं॥ ६२॥

रणके शूरमाके समान वहीं डटके पहुँचती है, सबभी नहीं रोकसकते। लाखोंकीभी भीरमें आँखें वहीं चलकर जाती हैं, विशेषोक्ति विभावना पूर्णोपमा ॥ ६२ ॥

ऐंचतिसी चितवन चितै, भई ओट अरसाय । फिरउझकनको मृगनयनि, दृगनिलगनियां लाय ॥

खैंचतीसी दृष्टिसे देखकर फिर अलसाकर ओटमें हुई मृग-नयनी मेरे नेत्रोंमें लगनियां लगाकर फिर देखनेके निमित्त अथवा हे सखी ! मृगनयनी मैं फिर उसके झाँकनेके निमित्त अपने नेत्रोंमें लगन लगा रहाहूं कि वह मुझे प्यार करती है फिर उझकैगी. अनुमानालंकार, जहां किसी बातसे कुछ मनमें होनहार विचारी जाय वह अनुमान है ॥ ६३ ॥

दूरौ खरे समीपको, मानलेत मन मोद । होत दुहुँनके दृग नहीं, चतरस हँसी विनोद॥ ६४॥

यद्यपि वे दोनों दूर खड़ेहैं. परन्तु समीपका मनमें आनंद

मानतेहैं, दोनोंके नेत्रोंमेंही बातोंका रस और हँसीका आनंद होताहै प्रथम विभावनालंकार ॥ ६४ ॥

यदपि चवायनि चोकनी, चलति चहूँ दिशसैन ।
तदपि न छाँडत दुहुँनके, हँसी रसीले नैन ॥६५॥

यद्यपि चबाव करनेमें चिकनी चुटपटी चतुरहैं, यद्यपि चारों ओर उँगुली उठा उठाकर, लोगोंकी सैन चलती है, तौभी दोनोंके रसीले नेत्र हँसी नहीं छोड़ते तीसरी विभावना ॥ ६५ ॥

सटपटातसी शशिमुखी, मुख घूँघटपट ढांकि ।
पावक झरसी झमकिकै, गई झरोखे झांकि ॥६६॥

चन्द्रमुखी सटपटातीसी घूँघटके पटसे मुख ढककर अग्नि की झरसी झमककै झरोखेमें झांककर गई पूर्णोपमा॥ ६६ ॥

कबकी ध्यान लगी लखौं, यह घर लगिहै काहि ।
डरियतभृंगी कीटलौं, जिन वहई ह्वैजाहि ॥६७॥

हे सखी! मैं इसे कबकी ध्यान लगाये देखरही हूं यह इसका घर कौन सँभालैगा- मुझे डरहै कि, भृंगी कीटके समान ध्यान करते करते कहीं जिसका ध्यान करती है वही न होजाय भृंगी कीडा जिसे पकड़ताहै क्षणमें उसे अपना स्वरूप बनालेताहै स्मृति अलंकार ॥ ६७ ॥

रही अचलसी है मनो, लिखी चित्रकी आहि ।
तजे लाज डर लोकको, कहो विलोकति काहि ६८

वह ऐसी अचलसी होरहीहै, मानो चित्रकी लिखीहो, लोककी लाज और लोकका भय छोड़कर कहो किसको देखतीहो, उत्प्रेक्षालंकार ॥ ६८ ॥

पल न चलै जकिसीरही, थकिसीरही उसाँस ।
अबही तन रितयो कहा, मन पठयो किहिं पास६९

हे प्यारी! तुम्हारी पलक नहीं चलती, जड़सी होरही हो, तथा उसाँस थकसा रहाहै; क्या अबहीं किसीके पास अपना मन भेजकर तनु रीता किया है स्मृतिछेकानुप्रास ॥ ६९ ॥

नाम सुनतही है गयो, तनु औरै मन और ।
दबै नहीं चित चढरह्यो, अबै चढाये त्योर॥७०॥

प्यारी उनका नाम सुनतेही तुम्हारा तन और मन और और होगया, त्योरीके चढायेसे जो चित्तपर चढरहाहै सो दबता नहीं भेदकांति और छेकानुप्रास अलंकार ॥ ७० ॥

पूछे क्यों रूखी परति, सगबग रही सनेह ।
मनमोहन छवि पर कटी, कहै कन्यानी देह ७१

मेरे पूछनेसे क्यों रूखी होती है तेरी सनेहमें सगबग हो

रही है, तू मनमोहनकी छविपर रीझ रहीहै, सो तेरे शरीरके रोमांच कहे देते हैं, काव्यलिंग ॥ ७१ ॥

प्रेम अडोल डुलै नहीं, मुखबोलै अनखाय ।
चितउनकी मूरतिबसी, चितवनि माहिंलखाय७२

हे सखी तुम्हारा प्रेम अडोलहै डुलतानहीं, और मुखसे अनखाकर बोलतीहो, मनमें तुम्हारे प्यारेकी मूर्त्ति वसी है, सो नेत्रोंमें दीखतीहै,अथवा प्रेम निश्चलही है मुखसे अनखा-कर बोलनेसे डुलैगा नहीं, उनकी मूर्त्ति तेरे मनमें वसी है, यह चितवनहीमें दिखाई देताहै, अथवा प्रेम डोलहै सो हमने जाना कारण कि, डुलता है, भाव यह कि मूर्ति नहीं डुलती इससे तेरा चित्त उनमें दृष्टि आताहै और मुखसे बोलनेमें अनख है इससे विदितहै कि, हृदयमें नहीं अनुमानअलंकार॥७२॥

ऊँची चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत ।
दृगझलकित मुलकितवदन,तनु पुलकितकहिदेत।

ऊँचे देखकर सराहा जाता है, कबूतर गिरह लेताहै किस कारण नेत्र झलकते मुख मुलकता और शरीर पुलकित होताहै, नायकका कबूतर देखकर प्यारीके मनमें उसका स्वरूप आनेसे सात्विक भाव हुआ हेतुअलंकार ॥ ७३ ॥

यह मैं तोहीमें लखी, भक्ति अपूरब बाल ।
लहि प्रसाद मालाजुभौ,तनु कदम्बकी माल७४॥

हे प्यारी! यह मैंने तुझीमें अपूर्व भक्ति देखी कि,प्रीतमके गलेकी प्रसादमाला पाकर तेरा शरीर कदम्बकी मालासा हुआ रोमांच सात्विकहुआ हेतुअलंकार ॥ ७४ ॥

कोटियतन कीजे तऊ, नागरिनेह दुरैन ।
कहेदेत चित चीकनो, नई रुखाई नैन ॥ ७५ ॥

हे नागरि चतुरी चाहे कोटि उपाय करो, परन्तु प्रेम नहीं छिपता, स्नेहभरा मन और नेत्रोंकी नई रुखाई यह दोनों इसबातको कहेदेते हैं, पंचमविभावना विरुद्धसे काज होना रुखाईसे चिकनाई प्रगट है ॥ ७५ ॥

और सबै हरपी फिरैं, गावति भरी उछाह ।
तुही बहू बिलखी फिरै,क्यों देवरके व्याह ॥७६॥

और सब प्रसन्नहुई फिरती हैं, उछाहभरी गाती हैं, हे बहू । देवरके व्याहमें तू क्यों दुःखी हुई फिरती है उल्लासा-लंकार ॥ ७६ ॥

नैन लगे तेहि लगनिसों, छुटे न छूटें प्रान ।
काम न आवत एकहू, तेरसौ कि सयान ॥ ७७॥

मेरे नेत्र उन प्रीतमसे लगेहैं जो प्राण जानेमें न छूटेंगे तेरसौ सयानोंसे एकभी सयान मेरे काम नहीं आता, अत्युक्ता-लंकार [दोहा–अतिशय अर्थ प्रकाश जहँ, सो अत्युक्ति कहाय । प्राणगये छुटिहैं नहीं, नैना यों समुझाय ॥] ॥ ७७॥

तू मतमानै मुक्तई, किये कपटवत कोटि ।
जो गुनहीतो राखिये,आँखनि माहिं अगोटि ७८

लोगोंके कपटसे कोटिबातें करनेपरभी तू अपने चाहतेसे वियोम मतमानै जो नायक तुम्हारा अपराधी है तो आंखोंमें नजर बंद कररख. तात्पर्य यह है कि, प्रीतमको मानका रूप भला लगता है सो जानके रुठावैहै । गुणही अपराधी सम्भावना अथवा करोड़ कपट वल करनेपरभी अच्छेकी मतमानै जो हृदयमें गुणहै तो नेत्रोंमें भर रख । अर्थात् तू गुणी है तो छिपा तौ सही ॥ ७८ ॥

धन यह द्वैज जहां लख्यो, तजो दृगनि दुखद्वंद।
तुव भागनि पूरव उयो,अहो अपूरव चंद ॥७९॥

धन्य यह दोयजहै जहां देखागयाहै और नेत्रोंने दुःखद्वंद त्याग दिया अहो कृष्ण यह अपूर्व चंद्रमा तुम्हारे भाग्यसेभी पूर्वमें उदय हुआहै प्यारीका मुख जो चन्द्रवत कहाहै वही अपूर्व है पूर्णचंद्र पूर्वमें उदय होताहै सो दोयजके दिनही उस-पूर्ण चंद्रमुखीका पूर्वमें दर्शन है यही अपूर्वता है पर्या-योक्ति ॥ ७९ ॥

एरी यह तेरी दई, क्योंहू प्रकृति नजाय ।
नेहभरे हिय राखिये, तू रूखिये लखाय॥८०

हे नारायण! अरी यह तेरी प्रकृति (स्वभाव) किसी प्रकार नहीं जाती, हृदयमें स्नेह(प्रीतिरूप तेल)भर रक्खाहै तथापि तू रूखीही दीखती है, अतद्गुणालंकार [दोहा-जहँ गुणकी संगति नहीं, कहत अतद्गुण ताय । हियमें नेह भरो तऊ, रूखी बाल लखाय] ॥ ८० ॥

औरै गति औरै वचन, भयो वदन रँग और ।
द्यौसेक तैं पियचितचढी, कहैं चढौं हैं त्यौंर॥८१॥

औरही प्रकारकी चाल, औरही प्रकारकी वाक्यरचना, औरही प्रकारका मुखका रंग होगया, दो एक दिनसे पियाके चित्तपर चढी है, यह तेरी चढी त्यौरी कहे देती हैं, भेदकातिशयोक्ति॥ ८१ ॥

रही फेर मुँह हेरि इत, हित समुहें चित नारि।
दीठ परत उठि पीठकी, पुलकें कहत पुकारि८२

हे नारि! इधरको देखकर तू मुँह फेररही है, परन्तु तेरा चित्त प्रेमके सन्मुख है, प्यारकी दृष्टिके पडनेसे तेरी पीठपर जो रोमांच होगये हैं, वह इसबातको पुकारके कहते हैं अनुमान ॥ ८२ ॥

वे ठाढे उमडात उत, जल न बुझै बडवागि ।
जाहीसों लागो हियो, ताहीके उरलागि ॥८३॥

प्यारेको देख प्रिया सखीसे लिपटी उसपर कहते हैं वे उधर खडे हुए उमडते हैं उधर वड़वाग्नि (समुद्रकी आग) जलसे नहीं बुझती जिससे तेरा मन लगा है उसीके हृदयसे लग तौ यह तेरी कामाग्नि बुझैगी. स्वभावोक्ति ॥ ८३ ॥

लाज गर्व आरस उमँग, भरे नैन मुसकात ।
राति रमी रति देति कहि, औरै प्रभा प्रभात ॥ ८४

लाज, गर्व और आलस्य उमंगसे भरीहुई तेरी आँखें मुसकाती हैं, यह प्रभातसमयकी औरही प्रभा (कान्ति) कहे देती है रातके रमनेकी छिपी हुई रति क्रीड़ा, भेदकांतिशयोक्ति ॥ ८४ ॥

नटन शीश साबित भई, लुटी सुखनकी मोट ।
चुपकरिये चारीकरति, सारी परी सरोट ॥ ८५ ॥

हे सखी ! अब तू मुकरै मत, वह बातकी तैंने सुखकी मोट लूटी है तेरे शिर साबित है, यह सारीकी पड़ी सबबटैंहीं चुपकी चुपकी तेरी चुगली खाती हैं काव्यलिंग ॥ ८५ ॥

मोसों मिलवति चातुरी, तू नाह मानति भेद ।
कहेदेत यह प्रगटही, प्रगट्यो पूस प्रस्वेद ॥ ८६ ॥

मुझसे चतुराई मिलाती है और अपनी बातोंमेंसे भेद दूर

नहीं करती पूसके महीनेमें निकला हुआ यह पसीनाही इस बातको प्रगट कियेदेता है । प्रथमविभावना ॥ ८६ ॥

सही रँगीले रतिजगे, जगी पगी सुखचैन ।
अलसोहैं सोहैं किये, कहैं हँसोहे नैन ॥ ८७ ॥

यह सत्य है कि, रँगीले रात तेरे संग जागे और सुखचैन में पग कर तूभी जगी, आलभभरी हँसोंही तेरी आँखें मुझसे सौगंध करके कहेदेती हैं । एकके जागनेसे दोनोंका जागना होताही है फिर दोनोंका पृथक् कहनेका कारण यह कि, प्रीतम रँगभरेका जागना सहज समझा परन्तु तेरे जागनेसे उसका रतिपूर्वक जागना जाना । अनुमान ॥ ८७ ॥

औरै ओप कनीन कन, गनी धनी शिरताज ।
मनी धनीके नेहकी, बनी छनी पटलाज॥८८॥

तेरी आँखोंके कनीनकाओंके तारेकी औरही चमकहै इस कारण मैंने तुझे (धनी) बहुतोंकी शिरताज (गनी) गिनी अर्थात् जाना तू पियाके प्रेमकी मणि बनीहै तू लाजमें छिपाती है सो यह लाजरूपी पटमें छन निकलती है अर्थात् जैसे निर्मल मणिकी कांति वस्त्रमें छनकर निकलती है तैसे छिपानेसे तेरा नेह नहीं छिप सकता । भेदकांति० ॥ ८८ ॥

यह वसंत नखरी गरम, अरी न शीतल वात ।

कह क्यों प्रगटे देखियत, पुलकि पसीजे गात ८९

अरी यह वसन्तऋतुहै, इसमें न बहुत गरम और न बहुत ठंढी पवनहै, परन्तु यह तो कह कि, तेरे अंगमें पसीजे हुए रोमांच क्यों दीखते हैं, । प्रथम विभावना ॥ ८९ ॥

मेरे बूझे बात तू, कत बहरावति बाल ।
जगजानी विपरीतरति, लखिबिंदुलीपियभाल ९०

हे बाले ! मेरे बूझनेसे क्यों बात बहराती है, प्रीतमके माथे पर बिन्दी देखकर तेरी विपरीत रति सबने जानली । अनुमान ॥ ९० ॥

सुदुतिदुराईदुरतिनहिं, प्रगटकरतिरतिरूप ।
छुटे पीकऔरै उठी, लालीओठअनूप ॥ ९१ ॥

हे सुदुति ! सुन्दर दांतवाली तेरी अच्छी शोभा छिपाई नहीं छिपती, कामकेलिका रूप प्रगट करती है, पीक छुटके होठमें और भी नई लाली खुली कि, जिसकी उपमा नहीं है, पीक छुटनेका कारण यह कि, सब रंग प्रीतमके अधरोंने लेलियाहै, और उसके दुरानेका कारण यह कि, यह स्त्री परकीयाहै, इसकारण स्वामी आनकर पूछै कि, पान कहां खाया तब उत्तर न बनेगा । भेदकांतिशयोक्ति ॥ ९१ ॥

रँगीसुरतिरँग पियहिये, लगी जगी सबराति ।

पैंडपैंडपरठठकिकै, ऐंडभरी ऐंडाति ॥ ९२ ॥

कामकेलिमें रँगकर पियाकी छातीसे लग यह सारी रात जागीहै, इससे पग पग पर खडी होकर गर्वभरी ऐंडाती है स्वभावोक्ति ॥ ९२ ॥

तरवन कनक कपोल द्युति, बिचही बीच बिकान।
लाल लाल चमकतिचुनी, चौकाचिह्नसमान ९३

जड़ाऊ सोनेकी बनी ढेरीका सोना कपोलकी कांतिहीमें मिलगया लाल लाल चुन्नी दाँतके चौकेके समान चमकती है पूर्णोपमा ॥ ९३ ॥

पटको ढिग कत ढापियत, शोभित सुभग सुभेप।
हदरदछदछबि देखियत,सदरदछदकीरेप॥९४॥

इसे घूंघटपटके निकट क्यों ढकतीहो, यह तो सुन्दरस स्वरूपसे शोभा देती है तुरतके दांतोंके घावकी लकीर हद भर होठोंकी शोभामें दिखाई देती है। बिभावना और वृत्त्यनुप्रास ॥ ९४ ॥

कहि पठई मनभावती, पिय आवनकी बात।
फूली आँगनमें फिरै,आँगन आँग समात॥९५॥

जिस समय प्यारेने प्यारीके मनकी चाही अपने आनेकी

बात कहकर भेजी उससे प्रसन्नहो आँगनमें फिरने लगी शरीरमें शरीर नहीं समाता । लोकोक्ति ॥ ९५ ॥

फिरिफिरिविलखीह्वैलखति,फिरिफिरिलेतिउसास ।
साईंसिरकचसेतलौं,बीत्योचुनत कपास ॥ ९६ ॥

वारबार अनमनीहो देखती है, और बार २ ऊँची सांस लेती है, स्वामीके शिरके श्वेतबालोंके समान बीतीहुई कपास चुनती है, अनुशयना अपने क्रीडाके स्थान कपासके खेत नष्ट होनेपर शोच करतीहै, अथवा कपासके खेतमें संकेत स्थान था उसके नष्ट होनेसे दुःख हुआ। पूर्णोपमा दृष्टान्तालंकार ॥ ९६ ॥

सनसूख्योबीत्योबनौ, ऊखौ लई उखारि ।
अरीहरीअरहरअजौं,धर धर हर हिय नारि॥९७॥

सन सूखगई कपासका बन बीत गया, गन्ने उखाड़ लिये हे आली! अभी अरहर हरीहै, मनमें धीरज रख, आशय यह कि, तू इन वस्तुओंके निबट जानेसे अभी शोच मतकरै यह अरहरका खेत अभी अच्छा संकेत स्थानहै, वीप्सा छेकानुप्रास " हरी २ वीप्सा " ॥ ९७ ॥

सतर भौंह रूखे वचन,करति कठिन मन नीठि।
कहाकरौं ह्वैजाति हरि, हेरि हँसोही दीठि ॥९८॥

सखीने प्यारीसे मान करनेको कहा तब उसने कहा आली टेढी भौंहें कर रूखे वचन कहतीहूं और नीठ-(कठिनाई) कर कड़ा मन भी करा परन्तु क्या करूं कृष्णके देखतेही मेरी दृष्टि हँसौंही होजाती है। तृतीय विभावना ॥ ९८ ॥

तुहूं कहति हौं आपहू, समझति बहुत सयान।
लखिमोहन जो मनरहै, तो मनराखौंमान॥९९॥

तू भी कहती है और आपभी मैं बहुत चतुराई समझूं हूं परन्तु मोहनको देखकर जो मन मेरे पास रहै; तो मनमें मान रखसकूं आशय यह कि, उन्हें देखतेही मन हाथसे निकल जाय है फिर मान कहांसे होय। विशेषोक्ति सम्भावना॥९९॥

दहैं निगोडे नैन यह, गहैं न चेत अचेत।
हौंकसिकैरिसकोकरौं;यहनिरखेहँसिदेत॥१००॥

हे सखी! यह मेरी निगोड़ी आँखें जरें ऐसी अचेत हैं कि, चेत पकड़तीही नहीं मैं हठकर मानको करतीहूं परन्तु यह कृष्णको देखतेही हँसदेते हैं। विभावना। हँसनेसे रिसनहीं रहती ॥ १०० ॥

इति कविवर बिहारीलालकी सतसईमें पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भावप्रकाशिकाटीकासहित प्रथम शतक पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

मोहिं लजावत निलज यह, हुलसि मिलैं सबगात।
भानु उदयकी ओसलों, माननजान्योजात१०१

यह निर्लज्ज नेत्र मुझे लजाते हैं और आप प्रसन्न हो प्यारे के सब शरीरसे मिले हैं जैसे सूर्य उदयहोनेपर ओस गई नहीं जानी जाती। इसीप्रकार उनके दर्शनसे मान गया हुआ नहीं जानाजाता। पूर्णोपमा ॥ १०१ ॥

खिचे मान अपराधते, चलिगे बढे अचैन।
जुरत दीठितजिरिसखिसी, हँसेदुँहुनके नैन१०२

हे सखी! पहले तो प्यारीके मानसे प्यारेके अपराध करने के कारण नेत्ररुके, पीछे परस्पर न देखनेके(अचैन) दुःखसे चलायमान होगये, हे सखी! दृष्टिके जुरतेही रिसत्याग दोनोंके नेत्र हँसपडे। प्रहर्ष अलंकार [दोहा—काज सफल जहँ यत्न बिन, कहत प्रहर्षणताहि। यत्नविना प्यारी मनी, है प्रसन्न चितचाहि] ॥ १०२ ॥

रात दिवस हौंसे रहैं, मान न टिक ठहराय।
जेतो अवगुण ढूँढिये, गुणौ हाथपरिजाय॥१०३॥

हे सखी! हमें रात दिन इसी बातकी हौंस रहै है:कि, प्यारे से मान कराकर देखैं परन्तु मान ठीक नहीं ठहरता प्यारेका

जितना अवगुण ढूँढती हूं उतना गुणही हाथमें पड़जाताहै। विशेषोक्ति ॥ १०३ ॥

जौलौं लखौं न कुलकथा, तौलौं ठिक ठहराय।
देखे आवत देखबो, क्योंहूं रह्यो न जाय ॥१०४॥

हे सखी! जबतक घनश्यामको नहीं देखती तबहींतक कुलकानकी कथा ठीक ठहरती है, उन्हें देखनेसे तो मनमें देखनाहीं आताहै किसी प्रकारभी रहा नहीं जाता। संभावना ॥ १०४ ॥

कपट सतर भौंहैं करी, मुख सतरौंहैं बैन।
सहजहँसौंहैं जानकर, सौंहैं कराति न नैन॥१०५॥

हे सखी! हमारे कहनेसे प्यारीने मान किया सो तुम देखो कपटसे टेढी भौंहैं करी मुखसे क्रोधभरी बातें कहीं परन्तु स्वभावसे हँसनेवाली जानकर प्यारेके सन्मुख अपनी आँखोंको नहीं करती। छेकानुप्रासयमकालंकार ॥ १०५ ॥

नहिंनचायचितवतिदृगनि, नाहिं बोलति मुसकाय।
ज्यों२रूखरूखोकराति, त्यों२चितचिकनाय१०६

आँखोंको नचाकर नहीं देखती, मुसकाकर नहीं बोलती, ज्यों २ रूखरूखाकरतीहै त्यों२चित्त चिकनाहोता जाता है। विभावना ॥ १०६ ॥

तोहीको छुट मानगो, देखतही ब्रजराज ।
रही घरिकलौं मानसी,मानकियेकी लाज १०७॥

श्रीकृष्णके देखतेही तेरे मनका मान तो छुटके गया, परन्तु मानकियेकी लाजसे एकघडीतक तो तू मानको माने रही घडी एक मानकी सीमा न शोभा स्थित रही । कर-माल ॥ १०७ ॥

कियोजु चिबुक उठाय करि,कंपत कर भरतार ।
टेढीयहटेढीफिरति,टेढेतिलक लिलार ॥ १०८॥

ठोढी उठाकर जो कंपितहाथसे भर्त्तोने प्रियाके माथेपर तिलक किया, तो स माथेके टेढे तिलकसे यह टेढी हुई फिरतीहै कि, मुझसे अधिक कोई न्दर नहीं,प्यारीको देख जो सात्त्विकभाव आ इससे हाथ कांपनेसे टेढातिलक हुआ। पंचम विभावना ॥ १०८ ॥

तुम सौतिन देखत दई, अपने हियते लाल ।
फिरतिसबनमें डहडही,उहै मरगजीमाल॥१०९॥

सखी वचन हे प्यारे ! सौतोंके देखते जो तुमने अपने हृदय की माला उसे दी तबसे वह उस मुरझाई हुई मालाको लिये सबमें डहडही (हरीभरी) फिरती है । पंचम विभा-वना ॥ १०९ ॥

क्षणक उघारतिक्षणछुवति,राखतिक्षणकछिपाय।
सबदिनापियखंडितअधर,दर्पणदेखतजाय ११०

क्षणमें उघारती क्षणमें छूती और क्षणमें छिपारखती है सब दिन प्यारेके खंडित अधर दर्पणमें देखती जाती है, । जाति अलंकार लाटानुप्रास ॥ ११० ॥

छलाछबीले छैलको, नवल नेह लहि नारि ।
चूमतिचाहतिलायउर,पहरति धरति उतारि१११

प्यारी स्त्री छबीले लालके नये नेहमें उसके दिये छल्लेको पाकर चूमती है हृदय लगाय देखती है पहरती है उतार धरती है । प्रेमजातकालंकार परकीया प्रेमगर्विता वर्णन हुआ ॥ १११ ॥

स्वकीया रूपगर्वितावर्णन ।

दुसहसौतिशाल्यजुहिय,गनति न नाह बिवाह ।
धरेरूपगुणकोगरब,फिरै अछेह उछाह ॥११२॥

हे सखी । सौतनोंका दुस्सह खटका सबके मनमें होताहै परन्तु यह नायकके विवाहको कुछ नहीं गिनती; अपने रूप और गुणका गर्व धारणाकिये अनन्त आनंदसे फिरती है, अर्थात् इसने समझरक्खाहै कि, आजतक तो यह मेरी परख नहीं जानते थे, अब दूसरीके आनेसे जब वे बातें उसमें न देखेंगे तब मुझे अधिक जानेंगे । पंचमविभावना ॥ ११२ ॥

सुघर सौतिवश पिय सुनत,दुलहिनदुगुणहुलास।
लखीसखीतनुदीठिकर,सगरबसलजसहास११३

हे सखी! प्यारेको चतुर सौतिके वश सुनकर दुलहिनको दूना हुलास हुआ, इसकारण गर्व लाज और हासके सहित सखीकी ओर दृष्टि करके देखा, आशय यह कि, एक तो अपना रूप गुण अधिक जानती थी, दूसरे यह कि,जो सुन्दर के वशीहुए हैं तो मैं भी सुन्दर हूँ मेरे वशमें होंगे, वह चार दिनकी आई क्या चतुराई करसके है, इसकारण उसे तुच्छ जान अपनी सखीको देखा । विभावना ॥ ११३ ॥

हँसि ओठनि बिच कर उचै, किये निचो हैं नैन।
खरे अरे पियके प्रिया, लगी बिरी मुख दैन ११४

होठोंहीके बीच हँसकर हाथ ऊँचाकर निचोहे नैनकिये प्यारेके अधिक हठ करनेसे प्यारी मुखमें बीरी देने लगी कोई बीरीका अर्थ रंगनेकी बीरी करते हैं।जातिअलंकार॥११४॥

बिथुर्‌यो जावक सौतिपग,निरख हसी गहि गास।
सलज हँसौंहींलखिलियो,आधीहँसीउसास११५

सौतिके पगमें जावक (महावर) बिखरा देखकर ईर्षासे वह हँसी. लाजसे सौतको हँसती हुई देखकर आधी हँसीमें प्रियाने ठंढी श्वास ली, अर्थात् पहले तो उसे मूर्खही जाना

कि, इसको महावरतक लगाना नहीं आता, पीछे उसे हँसता देखकर जाना कि, यह प्रीतमने लगाया है, उसके हाथ काँपनेसे यह फैल गया है। तृतीय विषमालंकार (इष्टसे अनिष्टमाना) ॥ ११५ ॥

छला परोसिनि हाथते, छलकर लियो पिछानि।
पियहिदिखायोलखिबिलखि,रिससूचकमुसकानि॥

प्यारेका छल्ला पहँचानकर पडोसनके हाथसे छलकरके लेलिया बिलखकर प्रीतमको दिखाया और क्रोधसूचक मुसकानसे दुःखी हुई। पर्यायोक्ति अलंकार ॥ ११६ ॥

बिलखी लखै खरी खरी, भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैनन भजै,लखि बेणीके दाग॥११७॥

अनमनीहो खडी हुई बहुत क्रोध और उदासीसे देखने लगी,मृगलोचनी प्यारी प्यारेकी सेजमें और स्त्रीकी चोटीका चिह्न देखकर सेजपर जानेकी इच्छा नहीं करती। काव्यलिंग ॥ ११७ ॥

ढीठ परोसिन ईठ है, कहे जु गहे सयान॥
सबै सँदेशे कहि कह्यो, मुसकाहटमें मान॥११८

ढीठ परोसिनने चतुराई पकडकर हटतासे प्यारेके सब संदेश कहकर कहा मुसकाहटमें मान न चाहिये, आशय यह

कि, पडोसिनके संग कुछ प्यारेने मुसकान की सो प्यारीने देख लिया, मानकर बैठी तब वही परोसन प्यारेकी ओरसे समझाने आई, यही उसकी दृढ ढिठाई है, और हितकारी बनकर प्रीतमके निरपराध होनेके संदेश चतुराईसे सुनाकर कहा मुस्कुराहटमें मान नहीं चाहिये यदि रतिका चिह्न हो तो मान चाहिये [काकोक्ति] काव्यलिंग सूक्ष्मालंकार ॥११८॥

परकीया अन्यसंभोग दुःखिता ।

गह्यो अबोलो बोलप्यो, आपै पठै वसीठ ॥
दीठ चुराई दुहुँनकी, लखि सकुचौंहीं दीठ ११९

सखीको प्यारेके बुलानेको भेजकर प्रिया आप मौन गहे रही, उनकी दोनोंकी सकुचौंहीं दृष्टि देखकर अपनी दृष्टि चुराई। अन्यसंभोगदुःखिता प्रियाकी सखीका वचन सखीसे। आभिता अलंकार ॥ ११९ ॥

हठहितकरप्रीतमलियो, कियो जु सौति शृँगार ॥
अपनेकर मोतिन गह्यो, भयो हराहरहार॥१२०॥

हठ और प्रीतिकरके जो प्यारेने हार लिया उससे सौतिनका शृंगार किया, अपने हाथके मोतियोंका गुँथा हार सौतिनके गलेमें देख वह हार महादेवजीके हार (सर्पहार) सा हुआ। व्याघातालंकार [दोहा—सुखद दुखद होजाय जो

सो कहिये व्याघात । अपनो गूँथो हारभो, दुखद महा अनखात] ॥ १२० ॥

सुरँग महावर सौतिपग, निरखरही अनखाय ॥
पियअँगुरिनलाली लखै,खरीउठी लगिजाय १२१

सुंदर अथवा लालरंग महावर सौतिके पांयमें देख प्यारी महा क्रोधकर स्थितहुई, कारण कि, जो यह मुझे भावैहै तो प्रीतमकोभी भावैगी, परन्तु जव प्रीतमकी अँगुलियोंमें महावरकी लाली देखी तव तो अधिक आग लगउठी, । अनुगुण अलंकार ॥ १२१ ॥

स्वकीया स्वाधीनपतिका वर्णन ।

रहो गुणी वेणी लखे, गुहिवेको त्यों नार ।
लागे नीर चुचावने,नीठ सुखाये वार ॥१२२॥

रहनेदो तुमने चोटी गूँथदी और तुम्हारे गूँथनेकी चतुराई भी देखली, जो बाल हमने निचोडकर सुखायेथे वह पानीसे चुचाने लगे आशय यह कि,दोनोंको स्पर्शसे सात्त्विक हुआ। परिवृत्तालंकार [दोहा—परिवृत कीजे और कछु, और कछू बनजाय।गुहिवेको कारज लग्यो,करने नीर चुवाय] ॥१२२॥

प्रिय प्राणनिकी पाहरू, यतनकरति नित आप ।
जाकी दुसह दशाभये: सौतिनहू संताप ॥१२३॥

यह अपने प्रीतमके प्राणोंकी पाहरूहै इसकारण इसके प्रिय स्वयं सदा इसका यत्न करते हैं, जिसकी दुस्सह दशा देख कर सौतोंकोभी दुःख हुआ आशय यह कि, इसके प्राण जायँगे तो प्यारेकाभी मरण होगा । सम्बन्धातिशयोक्ति ॥ १२३ ॥

टुनिहाई सब टोलमें, रही जु सौति कहाय ।
सुतौ ऐंचापियआपत्यौं, करीअदोषिलआय १२४

जो टोना करनेवाली सब सखियोंके समूहमें तेरी सौति बाजरहीथी, सो तैंने नायकको वशकर वह सौत बेछूत करदी लेखालंकार, जो सौतोंका वशीभूत करना कर्म दोषमयथा टोनाके पदसे वह गुण हुआ, जैसे टुट कहेरी भूतकी छूत दूर-करै तैसे इसने सौतसे दूरकर निज वशकिया ॥ १२४ ॥

स्वकीया प्रोषितपतिका ।

रह्यो ऐंच अन्त न लह्यो, अवधि दुशासनवीर ।
आली वाढत विरह ज्यौं, पंचालीको चीर ॥ १२५ ॥

खैंचरहा है परन्तु अवधिरूप दुःशासनवीरने उसका अन्त न पाया, हे सखी ! द्रौपदीके चीरके समान मेरा विरह बढता जाताहै । पूर्णोपमा ॥ १२५ ॥

हिय औरसी होगई, टरे अवधिके नाम ।
दूजे करि डारी खरी, बौरी बौरे आम ॥ १२६ ॥

अवधिके नाम टलनेसे प्यारी मनमें औरहीसी होगई और दूसरे बौरे अर्थात् मौले हुए, आमने तो उसे बावलीही करडाला । भेदकातिशयोक्ति ॥ १२६ ॥

छप्यो नेह कागज हिये, भई लखाइ न टांक ।
विरहतचे उघर्यो सुअव, सैहुँडकोसो आँक १२७

जो कागजरूपी प्रीति निर्मल मनमें छिपी थी और थोडी भी प्रसिद्ध न हुई सो अब थूहरके दूधके लिखे अक्षरसी विरहकी आगसे सिककर खुली । पूर्णो, और गलीभार आया अक्षर आगपर सेकनेसे चमकते हैं ॥ १ अलंकार ॥१२४॥

चित तरसत मिलत न वनत, बसपरोस ।
छाती फाटत जात सुनि, टाटी ओट बिदेश १२५

मन तरसताहै परन्तु पडोसके घरमें मिली इन साथा- नहीं बनता । टट्टीकी ओटमें लम्बी सांस जो वर्षाकालमें जातीहै नायकका वचन सखीसे।विशेषो॥ १२८ ॥

रहि हैं चंचल प्राण यह, कहि कौनअगयोआन।
टलनचलनकीचितधरी, कल न मलान ॥१३६॥

सखी अब यह मेरे चंचल प्राण हाथ पकड़ चलने प्यारेने तो चलनेकी चित्तमें धरी न होगया दो पड़ी ओट होनेसे कल नहीं पड़तीहै, मन

अजौं न आये सहज रँग, विरह दूबरे गात ।
अबहीं कहा चलाइयत, ललनचलनकी बात १३०

जो सहजके रंगथे वह विरहके दुबले शरीरमें अभीतक नहीं आये. फिर हे कृष्ण ! अभीसे क्या चलनेकी बातचलाते हो अधैर्याक्षेपालंकार ॥ १३० ॥

पूसमास सुनि सखिनिपै, साईं चलत सवार ।
—बिहर बीण —षिण तिय, रोप्यो राग मलार १३१

बाजरहीथी, सो तैंने न
लेखालंकार, जो सौतोंसे यह वचन सुनकर कि, प्यारे प्रातः-
टोनाके पदसे वह गु-यगे, वीणा हाथमेंले नागरीने राग मलार
करै तैसे इसने सै: यह कि, पूस महीनेके मेघसे अकाल वृष्टि
नहीं । उपायाक्षेपालंकार ॥ १३१ ॥

रह्यो ऐंच अन्त ने पलनमें, अँसुअ झलके आय।
आली बाढत विरखिन हूं, झूँठेही जमुहाय॥१३२॥

खैंचरहा है परन्तु नतेही पलकोंमें आँसू आ झलके सखियों न पाया, हे सखी ! द्रौप..., कारण कि, झूँठेही जँभाई लेनेलगी । जाताहै । पूर्णोपमा ॥ १२

हिय औरसी होगई, ले, सबसुख संग लगाय ॥
दूजे करि डारी खरीर निशि, पियमोपासबसाय ॥

चलते २ प्यारे हमारे सब सुख अपने साथ लेचले केव-ल गरमीके दिन और शिशिर ऋतुकी रात हमारे साथको बसा चले, अथवा ग्रीष्मके दिनके समान शिशिरकी रात हमारे निकट छोड़ चले। लुप्तोत्प्रेक्षालंकार॥ १३३॥

बिलखी डबकौहै चखन, तिय लखि गमन बराय।
पिय गहवर आयो गरो, राखी गरे लगाय॥१३४॥

प्यारेके जानेमें व्याकुलहो जब आंखें डबकाने लगीं तब यह देख प्रीतमने अपना जाना टालदिया, और गलाभरि आया प्यारीको गलेसे लगा रक्खा। लाटानुप्रास अलंकार॥१३४॥

वामा भामा कामिनी, कहि बोलो प्राणेश।
प्यारी कहत लजातनहिं, पावस चलतविदेश१३५

हे प्राणपति! आप मुझे वामा भामा कामिनी इन साधा-रण नामोंसे पुकारो, प्यारी कहते लजाते नहीं जो वर्षाकालमें मुझे छोड विदेश जातेहो। विचित्रालंकार॥ १३५॥

मिलचलिचलिमिलमिलचलत, आँगन अथयोभान।
भयो मुहूरत भोरतें, पौरी प्रथम मिलान॥१३६॥

मिलकर चलते चलकर मिलते फिर हाथ पकड़ चलते इसप्रकार आँगनके मध्यहीमें सूर्य अस्त होगया दो घड़ी

प्रातःकालके मुहूर्तसे ज्योढीमेंही प्रथम प्रस्थान (डेरा) हुआ लाटानुप्रास ॥ १२६ ॥

चाहभरी अति रिसभरी, विरहभरी सब बात ॥
कोरि संदेशे दुहुँनके, चले पौरिलों जात ॥१२७॥

चाहभरी क्रोधभरी और रिसभरी सब बातें हैं घरसे ज्योढीतक जानेमें दोनोंके करोड़ संदेशे चले । लाटानुप्रास अलंकार ॥ १२७ ॥

नये विरह बढती विथा, भई विकल जिय बाल ।
खीदेखपरोसिन्यों,हरषिहँसीतिहिकाल१३८

नये विरहकी बढती पीडासे बाल मनमें बहुत व्याकुल हुई और परोसिनको व्याकुल हुई देखकर उसीसमय हँसपड़ी आशय यह कि, अपने प्रीतमके गमनमें सौतको दुःखी देख हँसी । अनुमानालंकार ॥ १३८ ॥

चलत देत आभार सुनि, वही परोसिनि नाह ।
लसी तमासेके द्दगन, हांसी आँसुनि माँह॥१३९

प्रवत्सतपतिका और मुदिता, चलते समय उसी परोसिनके पतिको घरका भार सौंपता सुनकर आंसूभरे चंचल नयनोंमें हँसी शोभायमान हुई । प्रहर्षणा और पर्यायालंकार ॥ १३९ ॥

भये वटाऊ नेह तज, वाद वकति वेकाज।
अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अतिलाज॥

हे सखी! यह तो प्रीति छोड़कर वटोही पथिक होगये तू विना काज क्यों वकतीहै हे सखी! अब तो उराहना देत मनमें वहुत लाज उपजतीहै आशय यह कि, स्नेहत्यागी और वटाऊको उराहने देनेमें लाज आतीहै। काव्यलिंगआक्षेपालंकार॥ १४० ॥

स्वकीया आगमलक्षितावर्णन।

मृगनयनी दृगकी फरक, उर उछाह तन फूल।
विनहीपियआगम उमँगि, पलटनलगीदुकूल॥१४१॥

मृगलोचनीकी वाई आँख फडकतेही उछाहसे शरीर फूल गया, और विनाही प्रीतमके आगमनके प्रसन्नतासे अपना ओ-ढना वदलने लगी अर्थात् नया पहरने लगी। अनुमान॥१४१॥

वामवाहु फरकत मिलें, जो हरि जीवनमूरि।
तो तोहीसों भेंटिहों, राखि दाहिनी दूरि॥१४२॥

हे वाईं भुजा! तेरे फडकनेसे जो मेरे जीवनमूल कृष्ण मिलजांय तो दाहिनीभुजाको दूर रखकर तुझहीसे आलिंगन करूंगी। संभावना जायो आदिपदसे॥ १४२ ॥

मलिन देह वेई वसन, मलिन विरहके रूप ।
पिय आगम औरै बढी, आनन ओप अनूप १४३

मैली देह और वेई मलीन वस्त्र विरहके रूपमें हैं, परन्तु प्रीतमके आगमनसे मुखपर अनूप ज्योति बढी । भेदकांतिशयोक्ति ॥ १४३ ॥

कियो सयानी सखिनसों, नहिं सयान यह भूल ।
दुरै दुराई फूललों, क्यों पिय आगम फूल॥१४४॥

हे आली ! तैंने जो सखियोंसे यह चतुराईकी सो यह तेरी भूल है, प्यारेकी आगमनकी प्रफुल्लता फूलकी सुगंधि के समान छिपाये नहीं छिपती । पूर्णोपमा ॥ १४४ ॥

रहे बरोठेमें मिलत, पिय प्राणनके ईश ।
आवत आवतकी भई, विधिकी घरी घरीश १४५

द्वारके बाहर जो प्राणनाथ स्नेही जनोंसे मिलने लगे तो वह आते आतेकी घड़ी प्यारीको ब्रह्माकी घड़ीके समान हुई । धर्मवाचकलुप्तालंकार ॥ १४५ ॥

भेंटत बनत न भावतो, चित तरसत अतिप्यार ।
धरति उठाय लगाय उर, भूषण वसन हथ्यार ॥

ससुरालमें प्यारेसे मिलनातो बनता नहीं और प्यारसे चित्त तरसता है, इसकारण उनके भूषण वसन हाथियार उठाकर

हृदयसे लगाय रखती है। प्रेमालंकार[दोहा—कपट जहाँ नहिं होय कछु, प्रीति होय भरपूरि ॥ सो प्रेमालंकारहै, जानत हैं यह सूरि ॥ १४६ ॥

बिछुरे जिये सँकोच यह, मुखते कहत न बन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौहे नैन ॥१४७॥

बिछुरनेमें जीते रहे, यह बडा संकोच है, मुखसे बन नहीं कहेजाते, अन्तमें नीचे नेत्र किये दोड़के दोनों हृदयसे लिपटगये। काव्यलिंग ॥ १४७ ॥

ज्यों ज्यों पावक लपटसी, पियहियसों लिपटाति।
त्यों त्यों छुही गुलावकी,छतियाँअतिसियराति॥

प्रीतम परदेशसे आकर प्रियासे मिले इसपर सखीका वचन ज्यों ज्यों अग्निकी लपटसी चाहसे प्रीतमके हृदयसे लिपटती है, त्यों त्यों गुलावके छिडकनेकी भांति प्रीतमकी छाती वहुत ठंढी होतीजाती है । विभावना पावकते सियरात ॥ १४८ ॥

आयो मीत विदेशते, काहू कह्यो पुकारि।
सुनि हुलसी विहँसी हँसी, दोऊ दुहुँन निहारि॥

यह मित्र विदेशसे आये ऐसा किसीने पुकारकर कहा, सुनकर प्रसन्न हुई हँसी, और मुस्कराय दोनों दोनोंको देखकर आशय यह कि, नायकाकी छाती हुलसी, और वक्तामी

विहँसी और आंखें हँसी, मित्रकी प्रीति छिपायेथी सो सखियें उस समय बैठीथीं इसकारण प्रगट न कहा उपरोक्त चिह्नही से प्रगट हुई ॥ १४९ ॥

अहै कहै न कहा कह्यो, तोसों नंदकिशोर ।
बडबोली कत होतहै, बड़े दृगनके जोर ॥ १५० ॥

प्यारीके पास कृष्ण आये तब प्यारीने मान किया पीछे कृष्णको बुलाने भेजा जब सखी आई तब उससे पूछती है अरी कह तो तुझसे नंदकिशोरने क्या कहा सखी बोली अरी आंखोंके बलसे बडबोली क्यों होती है, कृष्णको न्यून करके नंदकिशोर क्यों कहती है । उत्तरालंकार ॥ १५० ॥

यदपि तेज रोहालयर, लगी न पलकौ बार ।
तउ ग्वैंडों घरको भयो, पैंडो कोश हजार १५१

यद्यपि पराक्रमसे प्रीतमका घोडा तेज चलनेवाला है और आतेमें एक पलभी देर न लगी तोभी गांवका मार्ग आते २ उत्कंठासे सहस्र कोशके समान होगया । विशेषोक्ति ॥ १५१ ॥

नभलाली चाली निशा, चटकाटी धुनि कीन ।
रतिपाली आली अनत, आये वनमालीन १५२

आकाशमें लालीहुई, रात्रि चली, चिडिएँ और भौंरे बोले हे आली ! प्रीति कहीं और स्थानमें पाली इससे वनमाली नहीं आये । वृत्त्यनुप्रास वासकसज्जा वर्णन ॥ १५२ ॥

झुकिझुकिझपकोंहैंपलन, फिरिफिरिजुरिजमुहाय।
जानिपियागम नींदमिस, दीसबसखीउठाय१५३

झुक २ के पलकें झपकाने लगा वारंवार ऐंडकर जंभाने लगी पीतमका आगमन जानकर नींदका मिसकर सब सखी उठादीं। पर्यायोक्ति ॥ १५३ ॥

ज्यों २ आवति निकटनिशि, त्यों२खरी उताल।
झमकि २ टहलें करै, लगी रहचटै बाल॥१५४॥

ज्यों ज्यों रात्रि आतीहै तैसे २ बड़ी उतावलीसे सब टहल करती है कारण कि,मनोरथका चसका लगा हुआ है। स्वभावोक्ति। रहचट-सोनेकी चाट ॥ १५४ ॥

फूली फाली फूलसी,फिरति जो विमल विकास।
भोर तरैयां होंहि ते,चलत तोहि पिय पास१५५॥

जोकि (विमल विकास) उज्ज्वल ज्योतिसे तरी सौतें फूली हुई फूलसी फिरती हैं सो तुझे प्रीतमके पास चलने देखकर भोरके तारोंके समना क्षीणकान्ति होजांयगी। उपमेय लुप्ता और वाचकलुप्ता ॥ १५५ ॥

उठि ठक २ ए तो कहा, पावसके अनुसार।
जानपरेगी देखियो,दामिनि घन अँधियार १५६

उठ वर्षाके समय नायकके पास चलनेमें इतनी अडचड़ क्यों है, वहां ऐसी विदित होगी कि, मानो बिजली बादलको लिये अंधकारमें हैं। भ्रांतालंकार ॥ १५६ ॥

गोप अथाइनिते उठे, गोरज छाई गैल ।
चलिबलिअलिअभिसारिके, भलीसँजोखेसैल ॥

गोप चौबारोंसे उठे और गायके चरणोंसे उठकर धूलि पंथमें छाई हे आली ! मैं बलिहारी जाऊं प्रीतमके पास चल, हे सखी ! अभिसारिकाकी संध्या समय भली सैल है। काव्य-लिंग ॥ १५७ ॥

छप्योछपाकरछितछयो, तमशशिहरन सँभारि ।
हँसति हँसति चल शशिमुखी,मुखतेआंचरटारि॥

शुक्ला अभिसारिकाको बाटमें जाते चंद्रमा छिपा, इसपर सखी बोली, छपाकर(चंद्र) छिपा भूमिपर अंधकार छाया, तू सकुचावे मत, अपनेको सँभालकर चन्द्रका अस्त सँभाल, हे चन्द्रमुखी ! मुखपरसे घूँघटको हटाकर तू हँसती २ चल अर्थात् हँसनेसे मुखपरसे घूँघट हटनेसे चाँदनी होगी।काव्य-लिंगअलंकार ॥ १५८ ॥

सघन कुंज घन घन तिमिर,अधिकअँधेरीराति।
तऊ न दुरिहैश्यामयह,दीप शिखासीजाति१५९

घनाकुंज है बहुतसे मेघोंका अँधेरा है महाकाली अँधेरी रात है, हे कृष्ण ! तोभी यह बाला जाती हुई दीपशिखाके समान नहीं छिपेगी । विशेषोक्ति लुप्तोपमेयसंकर ॥ १८९ ॥

युवति जौन्हमें मिलगई, नैक न होति लखाइ ।
सौंधेके डोरेलगी, अली चली सँगजाइ ॥१९०॥

वह बाला चाँदनीमें मिलगई किंचित् भी नहीं दिखाई देती सुगंधकी डोरसे लगी सखी बालाके संग चली जाती है। उन्मीलितालंकार । सुगंधिसे ज्ञान हुआ गौरतासे नहीं १९०॥

निशि अँधियारी नील पट, पहरिचली पियगेह ।
कहो दुराई क्यों दुरै, दीपशिखासी देह ॥१९१॥

अँधेरी रात है नीलपट पहरकर पियाके घर चली [गर्विताबोली] कहो इसपरभी यह दीपकी शिखासीदेह छिपायेसे अबभी कैसे छिपेगी । विशेषोक्ति उत्तरालंकार ॥ १९१ ॥

अरी खरी सटपट परी, विधु आधे मग हेरि ।
संगलगे मधुपन लई, भागि न गली अँधेरि १९२

हे सखी ! आधे मार्गमें चन्द्रमाको देखकर मुझे बहुत व्याकुलता हुई भौंरोंके संग लगनेपर भाग्यहीसे अँधेरी गली पाई अर्थात् गली अँधेरीमें जाकर भौंरोंसे छूटी । प्रहर्षणालंकार [दोहा—कार्यसिद्ध हो बिन यतन, मनमें हर्ष अपार॥

ताहि प्रहर्षण कवि कहै, गुणियनको आधार ॥ १६२ ॥

दंपतिदिवाभिसार वर्णन ॥

मिसही मिस आतप दुसह, दई और बहकाय ।
चले ललनमनभावतिहिं,तनुकीछाँहछिपाय १६३

बहानेही बहाने कठिन धूप करदी औरोंको टालदिया प्रीतमप्यारीको शरीरकी छाँहमें छिपाकर लेचले, आशय यह कि, परकीया बाला है उसकी कांति छिपानेको वस्त्र उढाय लेचले । पर्यायोक्ति ॥ १६३ ॥

दम्पतिनिशाभिसारवर्णन ।

मिलि परछाहीं जौन्हसों, रहे दुहुँनके गात ।
हरि राधा इक संगही, चले गलीमें जात ॥१६४॥

जैसे परछाईं चाँदनीमें मिलीहो, इस प्रकार प्रीतम और प्यारीके शरीर मिले हैं श्रीकृष्ण और राधिका इसप्रकार एक साथही मिले गलीमें चलेजाते हैं । मिलितालंकार ॥१६४॥

स्वकीया खण्डिता ।

पलनि पीक अंजन अधर, धरे महावर भाल ।
आज मिले सुभली करी, भले बनेहो लाल १६५

पलकोंमें पीक, होठोंमें अंजन, माथेपर महावर, लगायेहो आज मिले सो अच्छी करी, हे कृष्ण ! भले बनेहो धीराधीरा दूसरा । असंगति अलंकार ॥ १६५ ॥

मरकत भाजन सलिलगत, इन्दुकलाके वेप ।
झीन झगामें झलमलै,श्यामगात नख रेप १६६

नीलमणिका पात्र जैसे पानीमें पड़ाहो और उसमें चन्द्रमाकी कलाका प्रतिविम्ब हो, इसप्रकार पतले झगे (जामे) में श्याम शरीरके बीच नखकी रेखा चमकतीहै । लुप्तवस्तूत्प्रेक्षा ॥ १६६ ॥

वैसी यह जानी परत, झगा ऊजरे माँहि ।
मृगनैनी लपटी जु हिय, वेणी उपटी बाँहि।१६७

यह ऊजरे जामेमें वैसीही जानीजातीहै, मृगनैनी जो हृदयसे लिपटी सो उसकी चोटी बांहमें उपड़आईहै । अनुमानालंकार ॥ १६७ ॥

कत वेकाज चलाइयत, चतुराईकी चाल ।
कहेदेत गुण रावरे,सब गुण निर्गुण माल॥१६८॥

विनाकाज चतुराईकी रीति क्यों चलातेहो, यह विना डोरेकी मालाही आपके सब गुण प्रगट कियेदेतीहै, हृदयपर मालाका चिह्न जो पड़ाहै सो रतिको प्रगट करताहै । विरोधाभास ॥ १६८ ॥

तुरत सुरत कैसे दुरत, मुरत नैन जुरि नीठि ।
डौंडी दै गुण रावरे, कहै कनौडी डीठि ॥१६९॥

हेप्रीतम ! तुरतका मैथुन किसप्रकार छिपसकताहै, दृष्टि मिल कर तुम्हारे नेत्र मुरतेहैं, और कनौड़ी दृष्टिही यह तुम्हारे दोष ढंढोरा देकर कथन करताह । वृत्त्यनुप्रासलोकोक्ति ॥ १६९ ॥

पावकसों नैननि लग्यो, जावक लाग्यो भाल ।
मुकर होहुगे नकम,मुकुर विलोको लाल ॥१७०॥

आँखोंमें आगसी लगीहै,माथेमें जो महावर लगाहै, थोडी देरमें मुकर जाओगे,इसकारण हेलाल ! तनक दर्पणमें अपना मुख तो देखो । पूर्णोपमा जमकलाटानुप्रास ॥ १७० ॥

प्राणप्रिया हियमें बसै, नखरेखा शशि भाल ।
भलो दिखायो आन यह, हरिहररूपरसाल १७१

प्राणप्यारी तुम्हारे हृदयमें निवास करतीहै, जैसे विष्णुके हृदयमें लक्ष्मी, नखकी लकीर शिरपर है जैसे शिवके माथे पर चन्द्रमा, यह अपना रसाल शिव और विष्णुका भलारूप दिखाया । रूपकालंकार ॥ १७१ ॥

नखरेखा सोहै नई, अरु सोहै सब गात ।
सौहैं होत न नैन यह, तुम सौहैं कत खात १७२

नवीन नखप्रहारकी रेखा शोभा पातीहै, सब शरीर आलस्य भरेहैं, और यह नेत्र सामने नहीं होते फिर तुम सौगन्ध क्यों खातेहो । जमकालंकार ॥ १७२ ॥

पल सोहैं पग पीकरँग,छल सो हैं सब बैन ।
बल सोहैं कत कीजियत, यह अलसौंहैं नैन १७३

पीकके रंगसे पगी पलकें शोभित होतीहैं, और छलसे तुम्हारी सब बातें शोभितहैं, बलसे सन्मुख यह आलस्य भरी आँखें क्यों करतेहो । वृत्त्यनुप्रास ॥ १७३ ॥

पटसों पोंछ परी करो, खरी भयानक वेषि ।
नागनि है लागति दगनि, नागबेलिरँगरेषि १७४

वस्त्रसे पोंछकर दूर करो यह तुम्हारा बहुत भयानक वेषहै, यह तुम्हारी आँखोंमें लगी हुई पानकी रेख मेरी आँखोंको सांपन होकर काटती है। लुप्तोत्प्रेक्षालंकार॥१७४॥

जिहि भामिनि भूषण रच्यो,चरण महाउर भाल।
उही मनो अँखियां रँगी,ओठनिके रँगलाल१७५

जिस प्रियाने शृंगार बनाय अपने पाँवकी महावर तुम्हारे माथेमें लगाई,उसीने अपने होठोंके रंगसे मानो तुम्हारी आंखें रंगीहैं, आशय यह कि, उसने मान किया तुम पांव पडे इससे माथेमें महावर लगगया और रातिमें जागे इससे नेत्र लालहैं । वस्तूत्प्रेक्षा असंगति ॥ १७५ ॥

गडेबडेछबिछाकिछकि, छिगुनी छोर छुटैं न ॥
रहे सुरँगरँग रंगि उही,नहदी महँदी नैन ॥१७६॥

बड़े छविके नसेके छककर अर्थात् उसकी सुन्दरताके मदमें मतवारे होकर कन अंगुरीके छोर गडे छुटते नहीं उसी नखमें लगाई हुई महँदीसे नेत्र लाल रंगसे रँगरहेहैं।नह-नखून। सुरंग—लाल रंग। व्याजोक्ति॥ १७६॥

वेई गड गाडैं परी, उपड्यो हार हिये न।
आन्यो मोरि मतंग मनु, मार गुरेरनि मैन १७७॥

नायकके आगमनमें सखी वेई गढके गढे पडेहैं मोतियोंका हार छातीमें नहीं उमड़ाहै, मानो कामदेव हाथीको गुलेलोंसे मारकर फेर लायाहै उसके चिह्न हैं। असिद्धास्पदउत्प्रेक्षा। अथवा खण्डिता प्रीतमके हृदयपर परकीया विहारका हार चिह्न देख यह वचन बोली॥ १७७॥

ह्यां न चलै बलि रावरी, चतुराईकी चाल।
सनख हिये क्षण क्षण नटत, अनख बढावत लाल॥

हे लाल! यहां आपकी चतुराईकी चाल नहीं चलेगी यह छातीपर नखके चिह्न लगेहुए छिपाकर मेरा क्रोध क्यों बढा-तेहा। विरोधाभास॥ १७८॥

कत कहियत दुख देनको, रच रच वचन अलीक।
सबै कहा उरहै लखै, लाल महाउर लीक॥१७९॥

हे प्रीतम! झूठी बातैं बनारकर दुःख देनेको क्यों कहतेहो

सबक्या तुम्हारा मनहै, जो तुम्हारे माथेमें लगी महावर की लीक देखेंगी इससे विदितहै कि, मानिनीके पांव पड़ रति करके आयेहो । छेकानुप्रास अलंकार ॥१७९॥

तरुण कोकनद वरुण वर, भये अरुण निशिजागि
वाहीके अनुराग दृग, रहे मनो अनुरागि ॥१८०॥

यह नेत्र रात्रिमें जागकर लाल कमलके रंगके समान रक्तवर्ण होगयेहैं, मानो उसीके अनुरागमें रँग गयेहैं । उक्तास्पद ॥ १८० ॥

न कर न डर सब जग कहत, कत बेकाज लजात ।
सोहैं कीजे नैन जो, सांचो सौंहै खात ॥१८१॥

विना करे मत डरो ऐसा सब जगत् कहता है, फिर तुम बेकाज क्यों लजातेहो, जो सची सौगंध खातेहो तो नेत्र सन्मुख करो । जमक ॥ १८१ ॥

लालन लहि पाये दुरै, चोरी सौंह करै न ।
शीशचढे पनिहा प्रगट, कहैं पुकारे नैन ॥१८२॥

रात्रिको प्यारे और कहीं जागे इस पर प्यारी बोली हेलाल! मैंने जानलिया सौगंध खायेसे तुम्हारी चोरी नहीं छिपेगी शिरपर चढे चोरीकी पाग लगानेवाले तुम्हारे नेत्र इस बातको प्रगट कहतेहैं आंखें लाल हैं । काव्यलिंग ॥ १८२ ॥

रह्यो चकित चहुँघा चितै, चित मेरो मति भूलि ।
सूर उदय आये रही, दृगनि साँझसी फूलि १८३

मेरा मन मति भूलकर चारों ओर चकित होरहा सूर्य के उदयमें तुम आयेहो परन्तु तुम्हारी आँखोंमें साँझसी फूलरही है, अर्थात् लालहैं । तृतीय विभावना धर्मलुप्ता-लंकार ॥ १८३ ॥

आप दियो मन फेरिलै, पलटै दीनी पीठि ।
कौन चाल यह रावरी, लाल लुकावत दीठि १८४

तुमने जो आप मन दिया सो फेरकर उसके बदले मुझे पीठदी, हे कृष्ण! यह आपकी कौन रीति है जो अब दृष्टि छिपाते हो, विनिमया (बदला करना) लंकार ॥ १८४ ॥

मोहिं दियो मेरो भयो, रहत जु मिलि जिय साथ ।
सो मन बाँधन दीजिये, पिय सौतिनिके हाथ १८५

मन आपने मुझे दिया सो मेरा हुआ, मेरे जीके साथ मिलकर रहता है, हे प्रीतम ! यह मन बाँध कर सौतोंके हाथ न सौंपिये । काव्यलिंग ॥ १८५ ॥

मध्या धीरावर्णन ।

लन सलोने अरु रहे, अति सनेहसों पागि ।
नक कचाई देत दुख, सूरनलों मुखलागि ॥ १८६ ॥

हे कृष्ण! एक तो आप सलोने हो और अतिसनेहसों पगे हो परन्तु तुम्हारी यह थोड़ी कचाई दुःख देती है जो आप झूंठ बोलतेहो, अथवा जैसे सूरन (जिमींकंद) मुख लगके दुःख देता है तैसे तुम दुःख देतेहो। पूर्णोपमालंकार॥ १८६॥

आज कछू औरै भये, ठये नये ठिक ठैन।
चितके हितके चुगल ये, नितके होय न नैन॥ १८७

आज कुछ औरही नई टीक ठाने हुए हैं, वा नये उत्सवसे ठने कुछ औरही हैं परन्तु ठहरते नहीं हैं मनकी प्रीतिके चुगल यह तुम्हारे नयन सदाकेसे न होंय अर्थात् आज तुम्हारे नेत्र चंचल हैं इससे तुम्हारा भेद जानलिया। भेद कान्तिशयोक्ति वृत्त्यलंकार॥ १८७॥

अनत बसे निशिकी रिसनि, उर बर रह्यो विशेषि।
तऊ लाज आई झुकत, खरे लजौंहे देषि॥ १८८॥

रात्रिमें प्रीतम और स्थानमें बसे, इसकारण हृदय विशेषकर क्रोधसे बरगया है, तोभी प्यारेको लजाते हुए खड़े देख कर प्रियाको लाज आई। पंचमविभावना॥ १८८॥

फिरत जु अटकत कटनि बिन, रसिक सुरस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितनु, कत सकुचावत लाल॥

हे रसिक! जो रस बिना उलझन फिरनेको सो रस नहीं

खेल है, हे लाल! और और स्थानोंसे प्रीतिको नित्य क्यों सकुचाते हो, अर्थात् इन बातोंमें लोक कहैंगे प्यारी प्यारेसे प्रीति नहीं करती, इसकारण ठौर ठौर अटकते फिरते हैं। लोकोक्ति अलंकार ॥ १८९ ॥

कत सकुचत निधरक फिरो, रतियो खोरि तुम्हैंन ।
कहा करौं जो जा हिये, लगे लगोहे नैन ॥ १९० ॥

सकुचाते काहेको हो निधरक फिरो हो तुम्हें रत्तीभर दोष नहीं है, इसमें तुम्हारा क्या वश है जो यह लगोहे नयन जाकर लगजाते हैं। व्याजस्तुति यथा [दोहा—मुखपर स्तुतिसी लगे, अरु खलु निन्दा होय। इमि वचरचनाको कहैं, व्याजस्तुति सबकोय] ॥ १९० ॥

नेह तरेर्‍यो त्यौरकरि, कत करियत दृग लोल ।
लीकनहींयहपीककी, श्रुतिमणिझलककपोल ॥

क्रोधसे डरावना मुखकर नेत्र क्यों चंचल करतेहो यह लकीर पीककी नहीं जो तुम समझो कि और बालाने चुम्बन किया है प्रीतम जो कानमें कुंडल पहरे हैं उसके रत्नकी लाल झलक गालपरहै। व्याजोक्ति—और कुछ कहकर वस्तुको दुराना जैसे यहां पीक दुराई ॥ १९१ ॥

कत लपटैयत मोगरै, सौनजुही निशि शैन ।

जिहि चंपकबरनी किये, गुल्लाला रँग नैन ११२॥

मेरे गलेसे क्यों लपटते हो, मैं वह नहीं जिसने रातको तुम्हारे साथ सेजपर शयन किया और जिस चंपकवरनीने जगाकर फूल लालेके रंगके समान तुम्हारी आंखें कीं । सोगर सोनजुही चंपा गुल्लाला यह पद श्लेषहै । श्लेषालंकार ॥ ११२॥

प्रौढाधीरावर्णन ।

मैं तपाय त्रयतापसों, राख्यो हियो हमाम ॥
मति कबहूं आये इहां, पुलकपसीजहि श्याम ११३

मैंने तीनतापसे तपाकर अपना हिया हम्माम कररक्खाहै; जो कभी आवेंगे तो श्रीकृष्ण रोमांच होकर पसीजेंगे, आशय यह कि, कृपाकर मेरे मनके संताप दूर करेंगे, आधिदैविक–देवताओंसे होनेवाले ताप। आधिभौतिक लोककृत । अध्यात्मिक–आत्मासे होनेवाला यह मैंने तीन तापका महादुःख पायाहै, कृष्ण उद्धार करेंगे हमाम गरम पानीका कुण्डसा होताहै, उसमें स्नान करते हैं । रूपकालंकार ॥ ११३ ॥

जो तिय तुम मनभावती, राखी हिये बसाय ।
मोहिंखिजावतिदृगनिह्वै, वहई उझकति आय ११४

हृदयमें अपना प्रतिबिम्ब देख प्रीतमसे प्यारी

तुम्हारे मनमें जो भावतीहै वही तुमने हृदयमें बसारक्खी है, मुझे खिजाती है और तुम्हारी आंखोंमें होकर मुझे झाँकती है। लुप्तोत्प्रेक्षा ॥ १९४ ॥

प्रौढाअधीरा वर्णन ।

सदन सदनके फिरनकी, सदन छुटै हरिराय ।
रुचै तितै विहरतफिरो, कतविहरतउरआय १९५

हे कृष्ण ! घर घर फिरनेकी तुम्हारी बान नहीं छुटती अच्छा जहां तुम्हारी इच्छाहो वहां विहरते फिरो, मेरे हृदयमें क्यों विहरते हो अथवा आनकर मेरी छाती क्यों चीरते हो। लाटानुप्रासजमकालंकार ॥ १९५॥

सुभर भऱ्यो तुव गुणकणनि, पचयोकुबतकुचाल।
क्योंधौं दाऱ्यो लौहियो,दरकतनाहिंनँदलाल १९६

हे नंदलाल ! तुम्हारे गुणोंके सूखे धानसे भलीप्रकार भराहुआ तुम्हारी बुरीबात और कुचालसे पकाहुआ मेरा हृदय अनार की भाँति क्यों नहीं फटता । पूर्णोपमा ॥ १९६ ॥

केसर केसर कुसुमके, रहे अंग लपटाय ।
लगेजाननखअनखली, कतबोलत अनखाय१९७

केसरके फूलके तन्तु अंगमें लिपट रहेहैं त और बालाके

नख जानकर प्रीतमसे अनखाकर क्यों बोलती है । व्याजोक्ति ॥ १९७ ॥

प्रौढाधीरा ।

रसकेसे मुख शशिमुखी, हँसि हँसि बोलति बैन ।
गूढमान मन क्यों रहै, भये बूढ रँग नैन ॥१९८॥

हे चन्द्रमुखी! तू हँस हँसकर रसकेसे त्योरके वचन बोलती है, पर छिपाहुआ मान मनमें कैसे रहसकता है, तेरे नेत्रही बीरबहूटीकेसे रंगके होरहे हैं । काव्यलिंगलुप्तावाचक ॥ १९८ ॥

मोहूसों बातन लगे, लगी जीभ जेहि नाय ।
सोई लैउर लाइये, लाल लागियत पाय ॥१९९॥

प्रीतमको मनाते समय प्यारीके सन्मुख उसका नाम निकलगया जिसके कारण यह रूठीथी तब यह बोली मुझसेभी बातें करते तुम्हारी जीभ जिस नायकासे लगी उसीको ले हृदयसे लगाओ, हे कृष्ण ! मैं तुम्हारे पांव पडतीहूं मुझे छोड़ो । काव्यलिंग ॥ १९९ ॥

गहकि गाँस औंर गहे, रहे अधकहे बैन ।
देखि खिसौंहैं पिय नयन, किये रिसौंहैं नैन २००

सखीका वचन सखीसे, उमँगकर औरही आशय लिये

बातें करतीथीं सो वह अधकही बातें रहीं, प्रीतमके खिसौने नयन देखकर प्यारीने रिसभरी आंखें करी अर्थात् आंखोंसे जानलिया कि, यह और कहीं आसक्त है । भेदकातिशयोक्ति ॥ २०० ॥

इति श्रीकविविहारीदासकी सतसईमें पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत
दूसरा शतक पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

उत्तमा खण्डिता ।

वाहीकी चित चटपटी, धरत अटपटे पाय ।
लपट बुझावत विरहकी, कपटभरेहू आय ॥ २०१ ॥

उसीके मिलनेकी मनमें चटपटी है, इस कारण अटपटे पांव धरतेहो, इसप्रकार कपटभरेभी आकर तुम मेरे विरहकी तपत बुझातेहो । पंचम विभावना ॥ २०१ ॥

दक्षन पिय ह्वै वाम वश, बिसराई तिय आन ।
एकै वासरके विरह, लागे बरष बितान ॥ २०२ ॥

हे चतुर पिय ! तुमने एक स्त्रीके वशीभूतहो और स्त्रियोंको भुलादिया, हमें तो एकही दिनका विरह वर्षदिनके समान बीतनेलगा अथवा हे पिय ! तुम हमारे दहिने नहीं वामहो काव्यलिंग ॥ २०२ ॥

मध्यमा वर्णन ।

बालमवारे सौतिके, सुन परनारि विहारि ।
भो रस अनरस रँगरली, रीझ खीज इक बारि ॥ २०३ ॥

नायकने सौतकी वारीमें परनारीके यहां जाकर भोग किया, यह सुनकर रस और अनरस अर्थात् सुख और दुःख हुआ अर्थात् इस रंगमें मिलकर रीझीभी और खीजीभी सुख तो इस बातका कि, सौतकी वारी टलकर उसको दुःख हुआ, और अनरस यह कि, मेरे पास न आकर औरके पास गये, रीझी इसबातपर कि, मेरी वारी नहीं टली, खीजी इसपर कि, कहूं मेरे संग ऐसा न करें यह प्रकृति गुण है । दीपकालंकार ॥ २०३ ॥

अधमा वर्णन ।

मूँह मिठास दृग चीकने, भौंह सरल सुभाय ।
तऊ खरे आदर खरो, क्षण क्षण हियो सकाय ॥ २०४ ॥

मुखपर मीठापन चिकने नेत्र, सरल स्वभावकी भृकुटी है तोभी प्यारीके अति आदरसे क्षणक्षणमें हृदय डरता है अर्थात् ऐसा न हो कि, कहीं क्रोध कर उठे अर्थात् ज्यों २ नायक मीठी २ बातें करता है त्यों त्यों मन डरता है । पंचम विभावना ॥ २०४ ॥

रही पकर पाटी सुरिस, भरे भौंह चित नैन ।
लखि सपने पिय आन रति, जगतहु लगाते हियै न

क्रोधभरी भौंह नेत्र, और चित्तसे खाटकी पट्टी पकडे रही स्वप्नमें प्रीतमको अन्य नारीके साथ सम्भोग करता देखकर जागकरभी प्रीतमको हृदयसे नहीं लगाती । भ्रान्त्यलंकार ॥ २०५ ॥

इति नायक नायका वर्णनं नाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ।

अथ संयोगशृंगारवर्णन ।

अँगुरिनु उचि भरु भीतदै, उलमि चितै चखलोल।
रुचिसों दुहूँ दुहूँनके, चूमे चारु कपोल ॥२०६॥

पाँवकी अँगुरियोंसे उचक भीतपर बोझ देकर लटककर चञ्चल आंखोंसे चारों ओर देख परमप्रीतिसे दोनोंने दोनोंके सुन्दर कपोल चूमे। जात्यलंकार ॥ २०६ ॥

विपरीतरतिवर्णन ।

पर्‍यो जोर विपरीत रति, रुपी सुरत रणधीर ॥
कराति कुलाहल किंकिणी, गह्यो मौन मंजीर२०७

विपरीत रतिका भार पडनेसे प्यारी संभोगरूपी युद्धमें धीरहो डटगई उस समय तगडीके घुंघरू शब्द करनेलगे और पैरके भूषण नूपुरने मौनता गही। जाति वा समासोक्ति२०७

नीठि नीठि उठि बैठिहू, पिय प्यारी परभात।
दोऊ नींदभरे खरे, गरे लागि गिरजात॥२०८॥

नीठि २ उठ बैठकर प्रातःकालमें प्रीतम और प्यारी नींद में भरे खरे गले लगकर गिरपडते हैं। स्वभावोक्ति। नीठ नीठ—इच्छाकरके॥ २०८॥

विनती रति विपरीतकी, करी परशि पिय पाय।
हँसि अनबोलेही दियो, उत्तर दियो बताय२०९॥

प्यारीके चरण छूकर प्रीतमने विपरीत रति करनेकी प्रार्थना की प्यारीने विना बोलेही उत्तर दिया सो मैंने तुम्हें बताया आशय यह न बोलनाही अंगीकार है। विभावनापंचम २०९

रमणकह्योहँसिरमणिसों, रतिविपरीतविलास।
चितईफिरलोचनसतर, सगरवसलजसहास २१०

प्रीतमने हँसकर प्यारीसे विपरीत रतिके विलास करनेको कहा तब रूखी आंखोंकर लाज और क्रोध सहित प्यारीने देखा। हावसुभावोक्ति॥ २१०॥

प्रेमगर्व।

प्रीतम दृग मिहिचति प्रिया, पाणि परश सुखपाय।
जान पिछान अजानलों, नेक न होति जनाय२११

प्रीतमने आनकर पीछेसे आँखें मींची उस समय प्यारी हाथके लगनेका सुख पाकर जान पहँचानकर अजानकी भांति होती है यह बात सखियोंपर तनक नहीं खुलती। पर्यायोक्ति । छलसे इष्ट साधा ॥ २११ ॥

सरससुमिलचिततुरंगकी,करिकरिअमितउठान।
गोइ निबाहै जीति यह, प्रेमखेलचौगान ॥२१२॥

प्रेमपूर्वक भली प्रकार प्रीतमसे मिल चित्तरूपी घोड़ेके अनगिन्त धावे अर्थात् मनोरथ करके (गोइ) छिपाकर अथवा गेंदसे निबाहनेसे प्रेम और मैदानका खेल जीतते हैं अर्थात् जैसे घुडसवार गेंदको लकडीसे लुढ़काते सीमातक ले जातेहैं और जीतते हैं इसी प्रकार तूभी बुद्धिसे छिपाकर मर्यादातक निबाहले तो जीतेगी। रूपक ॥ २१२ ॥

दृग मीचत मृगलोचनी,भरयो उलटि भुजबाथ ॥
जानगई तिय नाथको, हाथ परशही हाथ॥२१३॥

पीछेसे आंख मीचतेही मृगलोचनीने हाथ उलटकर प्रीतमको अंकमें भरा, हाथसे छूतेही अपने प्रीतमके हाथको जानगई । काव्यलिंग ॥ २१३ ॥

मैं मिसहा सोयो समुझि,मुँह चूम्यो ढिग जाय॥
हँस्यो खिसानी गर गह्यो,रही गरे लिपटाय२१४॥

मैंने बहाना करके सोये हुएको निश्चयही सोया जान कर उनके धोरे जाय मुख चूमा जब वे हँसे तब मैं खिसियानी होगई उन्होंने मेरा गला पकड़ा तब मैं उनके गलेसे लिपट गई अर्थात् गलेमें हाथ डाल चुम्बन करना चाहा परन्तु मैं मुख ऊँचाकर लिपट गई। भ्रान्ति ॥ २१४ ॥

मुँह उघारि प्यौ लखि रहत, रह्योनगो मिस सैन॥
फरके होठ उठे पुलक, गये उघर युग नैन२१५॥

मुँह उघारकर प्रीतम देख रहेथे तब उससे बहाना करके सोना न बनपड़ा, होठ फड़क उठे शरीरमें रोमांच होकर दोनों नेत्र खुलगये। जात्यलंकार ॥ २१५ ॥

दोऊ चोर मिहीचनी, खेलन खेल अघात।
दुरत हिये लपटायके, छुवत हिये लपटात २१६॥

नायक और परकीया बाला आंखमिचौनी खेलतेहैं परंतु खेलसे मन नहीं भरता छातीसे लिपटकर छिपतेहैं और छा-तीसे लिपटकर छूतेहैं। विशेषोक्ति ॥ २१६ ॥

मद्यपानवर्णन।

हँसि हँसि हेरत नवलतिय,मदके मद उमदानि॥
बलकिबलकिबोलतिबचन,ललकिललकिलपटानि॥

नवोढ़ा बाला हँस हँसकर देखतीहै हर्षकी मदिरासे उमँगतीहै उमँग उमँगके बात करतीहै और बढ बढ कर प्रीतमसे लिपटती जातीहै! जाति अलंकार वा वीप्सा ॥ २१७ ॥

निपट लजीली नवल तिय, बहकि वारुणी सेइ ।
त्यों त्योंअतिमीठी लगै,ज्यों ज्यों ढीठीदेइ२१८

नवोढा बाला अत्यन्त लजौलीथी मदपान करके बहकगई ज्यों ज्यों प्रीतमसे ढिठाई करतीहै त्यों त्यों उसे अच्छी लगतीहै। जाति अलंकार ॥ २१८ ॥

खलितवचनअधखुलितदृग,ललितस्वेदकणजोति
अरुणवदनछबिमदछकी,खरीछबीलीहोति २१९

खिलखिलाकर बातें करती है अधखुले नेत्रहैं सुन्दर पसीनेके मोतियोंकी ज्योति चमकती है लाल मुखहै शोभाके मदसे मतवाली बाला अति शोभित होती है।जाति०॥२१९॥

रूपसुधा आसव छक्यो, आसव पियत बनै न।
प्याले ओठ प्रियावदन, रह्यो लगाये नैन २२०॥

प्यारीके रूपरूपी अमृतसे पेट भरनेके कारण मदपान नहीं कियाजाता, प्यालेसे होठ लगायेहैं और नेत्र प्रियाके मुखकी ओर लग रहेहैं। तुल्ययोगिता ॥ २२० ॥

गली अँधेरी साँकरी, भो भटभेरो आन।

परे पिछाने परस्पर, दोऊ परस पिछान॥२२१॥

गली अंधेरी और छोटी है वहां दोनोंका भटभेरा हुआ। परस्पर शरीरसे शरीर लगनेसे दोनों जानेगये । उन्मीलितालंकार ॥ २२१ ॥

लटकिलटकिलटकत चलत, डटतमुकुटकीछांह ।
चटकभऱ्योनटमिलगयो,अटक भटकवनमांह॥

झुकझुककर लटकते चलते मुकुटकी छाँहको देखते चटकभर छबिके भरे नटवर वेष किये कृष्ण अटकने भटकने वनमें मुझको मिलगये । जातिस्वभावोक्ति॥ २२२ ॥

अहे दहेडी जिन धरै, जिन तू लेइ उतारि ।
नीकेहै छींको छुवै, ऐसेही रह नारि ॥ २२३ ॥

प्रीतमका प्यारीसे परिहास; अरी दहीकी हांडी मत धरै और उतारकर मत भूलै, छींका छुआहुआ अच्छा लगता है हे नारि ! ऐसेही रह, आशय यह छींकेपर हांडी रखने प्यारीके अंग दीखे इसपर प्रीतमने कहा । स्वभावोक्ति ॥ २२३ ॥

मनन मनावनको करै, देत रुठाय रुठाय ।
कौतुक लाग्यो प्रिय प्रिया,खिजहू रिझवाति जाय।

प्रीतमका मन मनानेको नहीं करता इसकारण बारंबार

रुठा रुठा देता है, लीलामें लगे प्रीतमको प्रियाका क्रोध भी रिझाता जाता है। पंचम विभावना विरुद्धते कार्य॥ २२४॥

छै छिगुनी पहुँच्यो गिलत, अतिदीनता दिखाय ॥
बलि वामनको ब्योंत सुनि, को बल तुम्हैं पत्याय ।

परकीयासे रति मांगते हैं सो वह हँसी करती है अति दीनता दिखाकर अंगुरी छूकर पहुँचा पकड़तेहो, बलि और तुम्हारे वामन अवतारकी रीति सुनकर तुम्हारा विश्वास कौन करे, जैसे छोटेहो बलिसे भूमि मांग फिर सब लेकर उसे दुःख दिया इसीप्रकार अँगुरी पकड पहुंचेको हाथ चलाय सर्वस्व ले यही दशा हमारी करोगे। लोकोक्ति॥ २२५॥

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर ।
को घटिये वृषभानुजा, वे हलधरके वीर ॥ २२६ ॥

राधाकृष्णकी जोरी चिरकालतक जियो, इनका गंभीर प्रेम क्यों न हो, इन दोनोंमें कौन घाट है वृषभानुकी बेटी या बलदेवके भाई। समालंकार [दोहा—समप्रभाव वर्णन जहां, दो वस्तुनको होय॥ कहत समालंकार तेहि, जानत यहि कोइ कोय] ॥ २२६ ॥

कहा लडैते दृगकरै, परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट वनमाल २२७।

हे लाड़ले ! ऐसे क्या तुमने अपने नेत्र किये हैं जो तुम बेहाल पडेहो कहीं मुरली, कहीं पीला वस्त्र, कहीं मुकुट, कहीं वनमाला पड़ी है; चलकर तो देख । व्याजस्तुति ॥ २२७ ॥

यों दल मिलियत निरदई, दई कुसुमसे गात ।
करधर देखो धरधरा, अजों न उरको जात २२८॥

हे भगवन्! यह निर्दयी होकर फूलोंसे गातको ऐसे दलकर मलते हैं, हाथ रखकर देखो मेरी छातीका धड़कना अब तक नहीं जाता, नायकाकी सखीका नायकसे उरहना । विषमालंकार ॥ २२८ ॥

मैं तोसों कैवाँ कह्यो; तू जिन इन्हें पत्याय ।
लगालगी कर लोयननि, उरमें लाई लाय॥२२९॥

हे मन ! मैंने तुझसे कईबार कहा तू इनका विश्वास मत कर आंखोंमें लाग लगाकर निदान छातीमें आग लगाई है। आशय यह कि, बिना उनके जी पचगजाता है। असंगति२२९.

मन न धरति मेरो कह्यो, तू आपने सयान ।
अहै परन परि प्रेमकी, परहथ पारन प्रान॥२३०॥

तू अपनी सयानतासे मेरी बात मनमें नहीं रखती, अरी प्रेमके परनमें पड़के पराये हाथ जी मतडाले, आशय यह स्वयं प्रेमकर बांचमें हूजी मतडाले । वृत्त्यनुप्रास ॥ २३० ॥

बहक न इहि बहनापते, जब तब वीर निवास ।
बचै न बडी सबीलहू, चीलह घौंसुआ माँस ॥ २३१ ॥

हेबहन ! इस बहनापनसे मत बहकै, हे बहन! जब न तब इसमें विनाश है, कारण कि, बड़ी युक्तिसेभी चीलहके घौंसलेमें मांस नहीं बचता अर्थात् बहनचारेमें सुन्दर स्त्री नहीं बचसकती । दृष्टान्तालंकार ॥ २३१ ॥

तू रहि सखि हौंही लखौं, चढि न अटावलि बाल ॥
बिनही ऊगे शशिसमुझ, देहैं अर्घ अकाल २३२ ॥

हे सखि! तू यहीं रह मैंही देखूँहूं मैं बलिजाऊं तू अटापर मत चढै नहीं तो बिनही चन्द्रमा ऊगे लोक अकालमें तुझे चन्द्रमा समझ अर्घ्य देने लगेंगे। पर्यायोक्ति ॥ २३२ ॥

दयो अरघ नीचे चलो, संकट भानै जाय ।
सुचितीह्वै औरे सबै, शशिहि विलोकै आय २३३ ॥

अब अर्घ्य देचुकी नीचे चलो (भोजनकर) संकट दूर करैं औरभी सब सुचिती होकर चन्द्रमाको आकर देखैं अर्थात् दो चन्द्रमाका सन्देह जातारहै। संशयालंकार । पूर्ण अपूर्णके प्रश्नमें चन्द्रमाका उजाला लेना ॥ २३३ ॥

भाववर्णन ।

नाक चढै सीवी करै, जितै छबीली छैल ।
फिरि फिरिभूलि उहैगहै, पिय कँकरीली गैल २३४

एक समय प्रिया प्रीतम मार्गमें चले तब प्रीतम आप कँकरीले मार्गमें चलनेलगे, प्यारीके निमित्त श्रेष्टमार्ग छोड़ने लगे जब छैल आप कँकरीले मार्गमें चले, उस समय कंकर लगी तौ सीवी करती है यह चेष्टा प्रीतमको भली लगी इस कारण फिर भूलकर उस कँकरीले मार्गमेंही चलते हैं 'असंगति'॥

लखिलखिअँखियनअधखुलनिअंगमोरिअँगराय
अधिकउठतिलेटतिलटकि, आलसभरीजँभाय॥

अधखुली आंखोंसे प्रीतमको देख अंगमोड़कर अंगराई लेती है आधी एक उठ झुककर लेटती है, आलस्यभरी जंभाई लेती है 'स्वभावोक्ति' ॥ २३५ ॥

दोऊ चाहभरे कछू, चाहत कह्यो करन ।
नहिंजाचकसुनिसूमलौं, बाहरनिकसतबैन २३६॥

दोनों प्रीतमप्यारे चाहसे भरे कुछ कहा चाहते हैं, परन्तु लाज और संकोचसे कुछ नहीं कहते, जिसप्रकार मंगताके आनेसे सूम बाहर नहीं आता इस प्रकार दोनोंके मुखसे वचन नहीं निकलते. 'उपमा' ॥ २३६ ॥

उद्दीपनविभाववर्णन ।

ज्योंशरदराकाशशी, करति न क्यों चित चेत ।
मनो मदनक्षितिपालको, छाँहगीरछविदेत २३७॥

अरी शरदका पूर्ण चन्द्रमा उदय हुआ मनमें चेत क्यों नहीं करती, यह चन्द्रमा नहीं मानो कामरूप पृथ्वीपतिका छत्र शोभित होता है छाँहगीर छत्र 'वस्तूत्प्रेक्षा' ॥ २३७ ॥

अनुभाववर्णन ।

नावकसरसे लायकै, तिलक तरुणि इततांकि ।
पावकझरसी झमककै, गई झरोखे झाँकि ॥२३८॥

नावकके तीरकी समान तिलक लगाये प्रिया इस ओर देखकर खिड़कीमें झांककर आगकी लपटसी चमक कर चली गई, 'छेकानुप्रास' तथा 'उपमा' ॥ २३८ ॥

सुनिपगध्वनिचितई इतै, न्हातादियेही पीठि ।
चकीझुकीसकुचीडरी, हँसी लजीली दीठि २३९॥

जो पीठदिये हुए स्नान करती थी, उसने मेरे पांवका शब्द सुन मेरी ओर देखा, उस समय चौकी निहुराकर सकुची डरी और लजीली दृष्टिकर हँसी, 'हाव' समुच्चयालंकार २३९॥

सहितसनेहसकोच सुख, स्वेदकंप मुसिक्यानि ॥
प्राण पानिकरिआपने, पानदये मोपानि ॥२४०॥

प्रीतिसकुच और रोमांचके सहित मेरा जी अपने हाथमें कर अपने पान मेरे हाथमें दिये 'विनिमय' ॥ २४० ॥

विभ्रमहावबर्णन ।

रही दहेंडी ढिगधरी, भरी मथनियाँ वारि ।
करफेरत उलटीरई, नई बिलोवनिहारि ॥२४१॥

दहीकी भरी हँडिया निकट धरी रही, और दही मथनेकी बड़ी हाँडी पानीसे भर दी, और उलटी रई हाथसे घुमाती है तू अनोखी बिलोनेवाली है, अर्थात् प्रीतमको देख मन ठिकाने न रहा उस समयकी दशा सखीनें कही 'भ्रान्ति' ॥२४१॥

बेसर मोती द्युति झलक, परी ओठपर आय ।
चूनोहोयनचतुरातिय, क्योंपटपोंछ्योजाय २४२

बेसरके मोतीकी झलक तेरे होठपर आकर पड़ी है हे चतुरा यह पानका चूना नहीं है कपडेसे क्योंकर पोंछा जाय 'भ्रान्त अपन्हुति' ॥ २४२ ॥

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुखजोति ॥
फिरतिरसोईकेबगर, जगरमगरद्युतिहोति ॥२४३॥

तुरतकी धोई धोती पहेर चटकीली मुखकी कांतिसे रसोईके आंगनमें फिरती हुईके अंगकी शोभा जगर मगर होती है 'जाति अलंकार' ॥ २४३ ॥

क्षणेकचलतठठकतक्षणेक, भुजप्रीतमगलडारि ।
चढीअटादेखतिघटा, बिज्जुछटासीनारि ॥२४४॥

एक क्षणको चलती है फिर क्षणमात्रको ठठकती है प्रीतमके गलेमें बांहडाले विजलीकी छटासी वह बाला अटारी पर चढी घटा देखती है, 'धर्मलुप्तोपमा' ॥ २४४ ॥

राधा हरि हरि राधिका, बनिआये संकेत ।
दम्पतिरतिविपरीतसुख,सहजसुरतहूलेत॥२४५॥

राधा कृष्ण बनी और कृष्ण राधा बनकर संकेत (मिलापस्थान) में आये वह दोनों प्रियाप्रीत सहज सुरतमें ही विपरीत रतिका सुखलेते हैं,'काव्यलिंग.' इसी शोभाको मेरे पितृव्य कविवर झब्बीलालने यों लिखा है कि, पद. यह जोडी मेरे मनभाई है, गोरेलाल चंद्र सम सोहैं राधेश्याम अधिकमनमोहैं मानोघटामिलनशशि आईहै ॥१॥ मृदुमुसकानभरी टौनेकी, भाल बंधी बंदी सोनेकी, सखि दामिनिसी दमकाई है ॥ २ ॥ शिर मोरन चंद्रिका सुहाई, घटा निरख बोले मोर आई, जो लालने बंसी बजाई है ॥ ३ ॥ मुक्तमाल कुचबिच लटकी है । तामें यह शोभा अटकी है । जनु गिरि बिच नदी वहाई है ॥ ४ ॥ शिर मोतिनकी मॉंग विराजे । ताकी छवि बर्णति कवि लाजे । मनुबक पंक्ति बैठाई है ॥५॥ जबराधे इतउत कहुं डोलैं, नूपुर ऐसी बोली बोलैं । मानो दादुर झिंगर झरलाई है ॥६॥ बोलत राधे अति प्रिय वानी । सो वानी मोहि अति हि सुहानी । मनो कोयल कूक सुनाई

है ॥ ७ ॥ स्वांतिबूँद पिया दर्शन तेरो । प्रेम सखीको मन चातक चेरो । तेरे नामकी रटन लगाई है ॥ ८ ॥

चलत घरै घर घरतऊ, घरी न घर ठहराति ।
समुझिउहीघरकोचलै, भूलिउहीघरजाति २४६॥

अपने घरकी कोठरी कोठरीमें घूमती है, तोभी घरमें घडीभर नहीं ठहरती जानकरभी उसी घरको जाती है. भूलकरभी उसी घरको जातीहै. अथवा समुझ उही-घरघरकी उस दुर्नामताको समझकर घरको चलती है और फिर प्रेमके कारण निन्दाको भूल कृष्णकेही स्थानको चली आती है 'भ्रांति' ॥ २४६ ॥

नाहिं नहीं नाहींककै, नारि निहोरे लेय ।
छुवतओठविचआँगुरिन:विरीवदनप्योदेय २४७

नहीं नहीं कर प्यारी निहोरेसे लेती है. प्यारे पानकी बीडी देते समय होठोंको अंगुरियोंसे छू देते है 'कुट्टमित हाव, स्वभावोक्ति' ॥ २४७ ॥

गदराने तन गोरटी, ऐपन आड लिलार ।
हूठ्योदैअठलायदृग, करै गँवारि सुमार ॥२४८॥

गदराने शरीरकी गोरी नारी माथेपर ऐपनकी आड लगाये

अठखेलीसे आंखका धक्का दे गँवारी मुझे विद्ध किये देतीहै 'मदहाव' 'जाति' अलंकार ॥ २४८ ॥

जात मरी बिछुरत घरी, जल सफरीकी रीति ।
क्षणक्षण होत खरी खरी, अरी जरी यह प्रीति २४९

एकघरी भी जलसे बिछुरे तो मरजाती है यह मछरीकी रीति है, परन्तु हे सखी! यह हमारी जली प्रीति तो पलपलमें अधिक होती है आशय यह, मछरी तो मरकर दुःखसे छूटती है और मैं तो क्षणक्षण अधिक दुःखपाती हूं वा वियोगमें प्रीति बढती है तपनहाव वर्णन किया ॥ २४९ ॥

द्वैजसुधादीधितिकला, यह लखि दीठि लगाय ।
मनो अकाश अगस्तिया, एकै कली लखाय २५०

दोयजके चन्द्रमाकी अमृत भरी कलाको जान दृष्टि लगाकर देख, जैसे आकाशरूपी अगस्तके वृक्षमें एकही कली दिखाई दे रही है [दीधिति चन्द्रमा] । 'मुग्धाहाव-पर्यायोक्ति और उत्प्रेक्षालंकार' ॥ २५० ॥

मोट्टायितहाववर्णन ।

सकुचिसरकिपिय निकटतैं, मुलकिकछुकतनतोरि ।
करआँचरकी ओटकर, जमुहानी मुख मोरि २५१

सकुचकर प्रीतमके पाससे सरक मुसकुराकर प्यारीने अँगडाई ले हाथसे आँचरकी ओटकर मुख मोर जँभाई ली आशय यह कि,संभोगकी इच्छा की । 'स्वभावोक्ति'२५१॥

बेंदी भाल तंमोल मुख, सीस सिलसिलेबार ।
दृगआँजे राजै खरी, यही सहज शृँगार ॥२५२॥

माथेपर बेंदी, मुखमें पान, शिरके चिकने बाल, आंखोंमें काजर दिये इस सहज शृंगारसेही अच्छी शोभा पारही है । जाति अलंकार, विक्षिप्तहाव ॥ २५२ ॥

बिव्वोकहाव (स्त्रियोंका विलास)

बिधिबिधिकै निकरै टरै, नहीं परेहू पान ।
चितै कितै तैलै धरयो,इतौ इतै तन मान॥२५३॥

भाँति भाँतिसे प्रीतमने तेरा मान मनाया, पाँवभी पड़े परन्तु नहीं गया, देख तो इतने छोटे शरीरमें इतना बड़ा मान तैंने कहां रक्खा है । अधिक ॥ २५३ ॥

ललित हाववर्णन ।

बतरस लालच लालकी, मुरलीधरी लुकाय ।
सौंहकरै भौंहनि हँसै, दैन कहै नटिजाय॥२५४॥

बातोंके रसके लालचसे लालकी मुरली प्यारीने

छिपारक्खी, सौगंध खाया, भौंहोंमें हँसे देनेको कहै और फिर मुकर जाती है । पर्याय० स्वभावोक्ति ॥ २५४ ॥

विक्षेपहाव ।

गुडी उडी लखि लालकी, अँगना अँगना मांहि ।
बौरीलों दौरातिफिरै, छुवत छबीली छांहि॥२५५॥

प्रीतमकी गुड्डी (कनकैया) उडी देख वह बाला अपने आँगन २ में बौरीहुईसी दौडती फिरती है और पतंगकी छांहको छूतीहै । छेकानुप्रास पूर्णोपमा ॥ २५५ ॥

बोधकहाववर्णन ।

लखि गुरुजन बिच कमलसों,सीस छुवायोश्याम
हरिसन्मुख करि आरसी, हिये लगाई वाम२५६

गुरुजनोंके मध्यमें प्यारीको देख कृष्णने कमलको शिरसे छुवाया, और प्यारीने आरसी कृष्णके सन्मुखकर हृदयसे लगाई अर्थात् कृष्णने शिरपर कमल धर प्रणाम किया- प्यारीने आरसी दिखाय हिय लगाय रातमें मिलनेको कहा । सूक्ष्मालंकार ॥ २५६ ॥

मैंहू जान्यो लोचननि, जुरत बाढिहै जोति ।
कोहो जानत दीठिकों,दीठिकिरकिटीहोति२५७

हे सखी! मैंने जानीही कि आंखोंके मिलतेही आंखोंमें जोति बढैगी,यह मैंने नहीं जाना कि,दृष्टि लगनेसे दृष्टि किराकिटी

होती है आशय यह कि, देखतेही सात्त्विक हुआ और आंसूभर कर दृष्टि किरकिरी होगई । विषमालंकार ॥ २५७ ॥

हरिछवि जल जबतें परे, तबतें क्षणनिबरैन ।
भरत ढरत उडत तरत, रहत घरीलों नैन ॥२५८॥

कृष्णकी छविरूप जलमें जबसे पडेहैं, तबसे क्षणमात्रको निचिन्त नहीं हैं, भरते हैं, ढरकने हैं, मग्न होते हैं, तिरते हैं, कटोरेकी घड़ीकी समान नेत्रोंकी दशा है । उपमालंकार ॥ २५८ ॥

अलि इन लोयनको कछू, उपजी बडी बलाय ।
नीरभरे नित प्रति रहैं, तऊन प्यास बुझाय २५९॥

हे सखी ! इन नेत्रोंको कोई बडा रोग उपजाहै, इनमें नित जल भरा रहता है, तथापि (प्रीतमदर्शनकी) प्यास नहीं जाती, विनादेखे जल भरे, देखनेसे तृष्णा नहीं मिटती । विशेषोक्ति ॥ ५९ ॥

अलिइनलोयनशरनिको,खरो विषम संचार ।
लगे लगाये एकसे, दुहवन करत सुमार ॥ २६० ॥

हे सखी ! इन नैनारूपी बानकी कठिन गति है, यह लगे लगाये एकसे हैं और लगानेमे दोनोंको मूर्छित करते हैं असंगति ॥ ६० ॥

लोभ लगे हरि रूपके, करी सांट जुरिजाय।
होयनबेचीबीचही, लोयन बडी बलाय ॥ २६१ ॥

सट्टेकी गोष्ठीमें परस्पर मिलकर कृष्णके रूपके लोभमें लगगये यह मेरे नेत्र बड़ी बलाय हैं, इन्होंने मुझे बीचहीमें बेच दिया आशय यह कि, प्यारी प्रीतमके पास जातीथी अचानक वे मार्गमें मिलगये तो नेत्र लगजानेसे मन उनके आधीन होगया इस कारण सखीसे कहा कि, मैं वहाँतक पहुंची भी नहीं और इन्होंने सट्टाकर प्रीतमका रूप पान कर बदलेमें मुझे सेतमेत देदिया रूपक ॥ २६१ ॥

नैना नैकन मानहीं, कितो कह्यो समुझाय ।
तन मन हारेहू हँसे, तिनसों कहा बसाय ॥२६२॥

यह नेत्र मेरी एक नहीं मानते मैंने इन्हे कितनाही समझाकर कहा यह शरीर और मन हारनेसे भी हँसतेहैं इनसे क्या बसाय । विशेषोक्ति ॥ २६२ ॥

ढरे ढार तेही ढरत, दूजे ढार ढरैन ।
क्याहूं आनन आनसों, नैना लागत नैन॥२६३॥

हे सखी ! यह जिस ओर ढरगये उसी ओरको ढरगये दूसरी ओर नहीं ढरते यह हमारी आंखें किसी प्रकार भी

(आन) दूसरेके मुखकी ओर लगतीही नहीं ऐसी आसक्त है। छेकानुप्रास ॥ २६३ ॥

कहत सकल कविकमलसे, मो मत नैन पषान।
नतरुकुकत इनघिसिलगत,उपजत विरहकृशान॥

सम्पूर्ण कवि नेत्रोंको कमलसे कहतेहैं परन्तु मेरे मतमें नेत्र पत्थर हैं नहीं तो जब यह परस्पर चारहोकर मिलतेहैं तो इनकी रगडसे अग्नि क्यों उत्पन्न होतीहै कमलकी रगडसे आग उत्पन्न नहीं होती। हेतूत्प्रेक्षा ॥ २६४ ॥

साजे मोहन मोहकों, मोही करत कुचैन।
कहाकरों उलटे परे, टोने लोने नैन ॥ २६५ ॥

यह मैंने (अंजन लगाय) कृष्णके मोहनेको सजाये परन्तु यह मुझेही मोहित करते हैं क्याकरूं इन नेत्ररूप जादूगरका जादू उलटा मेरेही ऊपर पड़ा। विषमालकार ॥ २६५ ॥

मोहूसों तजि मोह दृग,चले लागि उहिंगैल।
क्षणक छाय छविगुर डरी,छलेछबीलि छैल २६६

मेरी आंखें मुझसे भी मोह छोड कर उनके पीछे हो उन्हीकी गैलचलीं छिन एक छविरूपी गुडकी डली दिखाके छबीले प्रीतमने मेरे नेत्र ठगलिये। रूपक ॥२६६॥

नख सिख रूप भरे खरे, तउ मांगत मुसकान ।
तजत न लोचनलालची,ये ललचौंहीं वान॥२६७॥

प्रीतमके नखसे सिखापर्यन्तके रूपमें अत्यन्त भर रहे हैं, तथापि मुसकुरानदेखनेकी इच्छा करते हैं यह लालची आपने ललचानेका स्वभाव नहीं छोडते । विशेषोक्ति२६७

यश अपयश देखत नहीं, देखात सांवलगात ।
कहाकरौंलालचभरे,चपल नैनचलिजात॥२६८॥

सखी ! यह यश अपयशको तौ नहीं देखते केवल उनके सलौने शरीरको देखतेहैं क्या करूं यह लालचभरे चञ्चल नेत्र उधरही चलजातेहैं अथवा आधेमें सखीने कहा तूं यश अपयश नहीं देखती केवल सांवले गात देखती है इसपर आगे उत्तर है। उत्तरालंकार ॥ २६८ ॥

लाज लगा मनमानहीं, नैनामो वसनाहिं ।
यह मुख जोरतुरंगलौं, एंचतहू चालिजाहिं २६९

यह नेत्र लज्जारूपी लगामको नहीं मानते, मेरे वशमें नहीं और मुख जोर घोडेकी समान खैंचनेसेभी उसी ओर चलेजातेहैं । उपमा और रूपक ॥ २६९ ॥

इनदुखिया आँखियानको,सुखासिरजोईनाहिं ।
देखतबनैन देखते, बिनदेखे अकुलाहिं ॥२७०॥

हे सखी इन दुखिया आंखोंको तौ विधाताने सुख बनायाही नहीं लोकोंके देखते लाजसे देखना नहीं बनता अथवा देखतेसमय आंसू आनेसे नहीं देखाजाता और बिन देखे अकुलाती हैं। विशेषोक्ति ॥ २७० ॥

को जानेह्वैहै कहां, जग उपजी अति आगि।
मनलागे नैननि लगै, चलै न मगलग लागि २७१ ॥

सखी कौन जाने क्या होगा जगतमें अधिक आग उपजीहै यह नेत्रोंमें लगतेही मनमें लगती है तू इसकारण इस (प्रेमकी आगके) निकट होकर मत चल। असंगति ॥ २७१ ॥

बनतनको निकसत लसत, हँसत हँसत इतआय।
दृगखंजनि गहिलैगयो, चितवनिचेपलगाय २७२

वनकी ओरको निकलते, शोभित होते हँसते हँसते इधर आकर अपनी चितवनका चेप लगाकर मेरे नेत्ररूपी खंजन (ममोले) को पकडकर लेगये। रूपकालंकार ॥ २७२ ॥

दृगउरझतटूटतकुटुमजुरतिचतुरसँगप्रीति।
परतिगांठदुर्जनहिये, दईनईयहरीति ॥ २७३ ॥

नेत्रोंके उलझनेसे कुटुम्ब टूटताहै चतुरके संग प्रीतिजुडती है शत्रुके मनमें गांठ पडती है हे विधाता यह नई रीतिहै। असंगति ॥ २७३ ॥

है हिय रहति हईछई, नई युक्ति यह जोइ।
आँखिन आँख लगीरहै, देह दूबरी होइ ॥२७४॥

हाय हाय तेरे हृदयमें यह नई रीति छाई रहतीहै आं-खोंसे आंखें लगी रहतीहैं और शरीर सूखताहै। असंगति २७४

क्योंवासिये क्यों निवहिये नीतिनेह पुरनाहिं।
लगालगी लोयनकरैं, नाहक मन बँधजाहिं २७५

यहां कैसे वसै और कैसे निवाहहो प्रीति नगरमें न्याव न-हीं होता लगालगी तौ नेत्र करते हैं, मन वृथा बँधजाता है। असंगति ॥ २७५ ॥

जात सयान अयान है, वे ठग काहिठगैन।
को ललचाय न लालके, लखिललचोहेनैन २७६

वहां सयाना भी अयाना होजाताहै वे नेत्ररूपी ठग किसे नहीं ठगते, लालके ललचोंहे नेत्र देखकर कौन न ललचावै। व्याजस्तुति ॥ २७६ ॥

डर न टरै नींद न परैं, हरै न काल विपाक।
क्षणछाकैउछकैनाफिर, खरोविषमछविछाक२७७

डर दूर नहीं होता, नींद नहीं आती, कालकर्म भोगको हरण नहीं करता, एकक्षण छककर फिर नहीं उछकता, छविके मद-

से छकना विषमतेजहै, आशय यह कि,हे सखी! भयसे मदका मद उतरजाताहै परन्तु रूपका मद नहीं उतरता, उसमें नींद आती है पर इसमें नहीं, वह समयपर जाताहै यह नहीं, उस-के पानसे चेत होजाताहै इसरूपको क्षणमात्र पान करनेसे फिर चेत नहीं होता,मदके मदसे रूपका मद बड़ाहै।आक्षिप्त उपमामें व्यतिरेक ॥ २७७ ॥

चित वित बचत न हरत हठि, लालन दृगबर जोर।
सावधानके बटपरा, ये जागतके चोर ॥ २७८ ॥

हे सखी मेरा चित्तरूपी धन नहीं बचता कृष्णके नेत्र बरजोरीसे उसको हरे लेतेहैं, सावधानकेबटमार और जागत के चोरहै [बटमार—मार्गलुटेरे] विभावना ॥ २७८ ॥

चखरुचिचूरन डारिके, ठग लगाय निजसाथ।
रह्यो राखिहठलैगयो, हथाहथी मनहाथ ॥२७९॥

आंखोंकी शोभारूप भभूत डालकर वह ठग अपने साथ लगाकर बलसे अति हठकर हाथोंहाथ में मनको पकड़कर लेगया आशय यह कि, उसकी शोभासे मेरा मन उसके साथ गया और रुक न सका जैसे ठग बुकनी डालकर हाथ पकड़ लेजातेहैं। विशेषोक्ति ॥ २७९ ॥

कोन्हें हू कोरिक यतन, अबगहि काढ़े कौन।

भो मनमोहनरूप मिलि, पानीमें को लौन २८० ॥

करोडयतन करकेभी अब पकडकर उसको कौन निकाले जलमें नमककी समान मिलकर मेरा मन कृष्णरूप होगया है । दृष्टान्त ॥ २८० ॥

फिरफिरि चित उतहीरहत, टुटीलाजकी लाव ॥
अँगमें अँग छविझौरमें, भयो भौंरकी नाव २८१ ॥

फिर फिरकरमन उधरही रहता है लाजरूपी रस्सी टूट गई अंग अंगकी शोभाके समूहमें मन भँवरकी नावसा चक्र खाताहै आशय यह है कि, जैसे रस्सी टूटनेसे नाव भँवरमें चक्कर खाती रहती है इसीप्रकार उसके रूपमें मेरा मन भ्रमता है । रूपक ॥ २८१ ॥

ओठ उचै हाँसी भरी, दृग भौंहनकी चाल ॥
मोमन कहा न पीलियो, पियततमाखू लाल २८२

होठ ऊंचे किये नेत्र और भौंहकी चाल हँसीसे भरी पीछे उन प्रीतमने तमाखू पान करते मेरा मन पीलिया । स्वभावोक्ति ॥ २८२ ॥

लरिका लेवेके मिसनि, लँगर मोढिग आय ॥
गयोअचानकआंगुरी, छाती छैलछुवाय ॥ २८३ ॥

बालक लेनेके बहाने वह छैल ढीट मेरे निकट आकर अचानक मेरी छातीमें अपनी अंगुरी छुवाय गया 'पर्यायोक्ति'

नई लगन कुलकी सकुच, विकलभई अकुलाय।
दुहूँओरऐंचीफिरै, फिरकीलौं दिनजाय॥२८४॥

नई प्रीति और कुलकी सकुचसे घबराकर व्याकुलहो दोनों ओर खिचीहुई फिरकीके समान फिरती है, इधर उधरकी खिचावटमेंही दिन जाता है, कभी प्रीतमका ध्यान कभी घरका संकोच 'उपमेयलुप्त' परकीयामध्यानायिका २८४

झटकि चढ़ति उतरति अटा, नैकनथाकतिदेह।
भई रहत नटको बटा, अटकी नागरिनेह॥२८५॥

झट चढती है, और झट अटारीसे उतरती है, देह थकती नहीं है वह नागरी (चतुर) नेह लगनेके कारण नटका चट्ट बट्टाहुई रहती है 'विशेषोक्ति रूपक' ॥ २८५ ॥

इततें उत उततें इतै, क्षण न कहूं ठहराति।
कलनपरति चकई भई, फिरिआवति फिरिजाति॥

इधरसे इधर उधरसे इधर फिरती है क्षणभर कहीं नहीं ठहरती कलनहीं पड़ती चकईके समान प्रेमसे देखनेको फिर २ आती और जाती है 'उपमेयवाचक लुप्तोपमा' २८६

उरउरझो चितचोरसों, गुरुगुरुजनकी लाज ॥
चढे हिंडोरेसे हिये, किये बनै गृहकाज ॥२८७॥

मनतौ चित्तचोरसे उलझ रहा है उधर गुरुजनोंकी लज्जा है हिंडोलेसे हियेपर चढकरभी बालाको घरका काम कियेही बनता है आशय यह है कि, डांवाडोल मनसे घरका काम करै है 'छेकानुप्रास' ॥ २८७॥

उनिहरकी हँसिकै उतै, इनसौंपी मुसिक्याय ॥
नैनामिलेमनमिलगयो, दोऊमिलवतगाय॥२८८॥

प्रीतमने हँसकर अपनी गौ प्यारीकी ओर हांकी प्यारीने हँसकर प्यारेको सौंपी, नैन मिलतेही मन मिलगया, जिस समय गाय मिलाई द्वितीय असंगति । हरकी—हांकी॥२८८॥

उनको हित उनहीं बनै, कोऊ करो अनेक ।
फिरतकाकगोलकभयो, दुहूंदेह ज्यौंएक ॥२८९॥

दोनोंका हित उनहीं दोनोंसे बन आता है और कोई कितनीही करो नहीं बनता दोनोंके शरीरमें एकही जीवको एकी आंखके समान कभी इधर कभी उधर फिरता है 'दृष्टान्त' ॥ २८९ ॥

याके उर औरे कछू, लगी विरहकी लाय ।
पजरैनीर गुलाबके, पियकी बात बुझाय ॥२९०॥

इसके हियमें औरही कुछ विरहकी बुरी आग लगी है गुलाबका जल छिडकनेसे बलती है और प्रीतमकी बात करनेसे बुझती है प्रोषितपतिका आग पानीसे बुझती है परन्तु विरहाग्नि पानीसे बढी. वात–हवासे अग्नि बढती है यहां बात वार्त्तासे बुझी यह विरुद्धते कार्य हुआ 'विभावना लंकार' ॥ २९० ॥

तियनियहियजुलगी चलत,पिय नखरेख खरोंट।
सूखनदेत न सरसई,खोंटिखोंटिखतखोंट २९१॥

चलते हुए प्यारीके हृदयमें जो प्रीतमके नखके खरोंट-की रेखा लगी है, सो उस क्षतके अंकुरको नखसे कुरेद २ कर उसका गीलापन नहीं सूखने देती यही खोट है. याद रखनेके निमित्त उपाय है 'अनुज्ञा' ॥ २९१ ॥

वसि सकोचवश वदनवश, साच दिखावतिबाल ।
सियलौंशोधतितियतनहिं,लगनि अगनिकी ज्वाल

प्यारी रावणरूपी लाजके वशमें रहकर भी अपना मन दिखा-ती है, और शरीरको लगनरूपी अग्निकी लपटमें सीताजीकी समान शुद्ध करती है अर्थात् जैसे रावणके यहांसे आनकर जानकीने अग्निमें अपना शरीर शोधा था. इसी प्रकार प्यारीभी अब लाज छोड संकेतमें आई है, और तुम्हें सत्त दिखानेको उत्सुक है इसमें है लाज और सत्य, और

रावणके यहां जानकी जैसे रामका ध्यान करतीथीं इसी प्रकार लाजके वश यहभी तुम्हाराही ध्यान करती है, सो चलकर देखो 'पूर्णोपमालंकार' ॥ २९२ ॥

नैकु नझुरसी विरह झर, नेहलता कुँभिलाति ।
नित नित होत हरीहरी, खरी झालरति जाति२९३

विरहाग्निकी लपटसे झुलसके प्रेमकी लता कुछभी नहीं कुँभलाती, प्रतिदिन हरी भरी हुई बढती जाती है, झालरति बढती है 'विशेषोक्ति' ॥ २९३ ॥

खल बढई बलकरिथके, कटे न कुवत कुठार ।
आल वाल उरझालरी, खरी प्रेम तरुडार॥२९४॥

हे सखी दुष्टरूप बढई बलकर हारगये उनके कुवचन रूपी कुल्हाडेसे नहीं कटता, थांवलेरूपी हृदयमें प्रेमवृक्षकी डाल बढतीही जाती है 'रूपक विशेषोक्ति' ॥ २९४ ॥

करत जात जेती कठिन, बढिरस सरिता सोत ।
आलवाल उर प्रेमतरु, तितो तितो दृढहोत २९५

रसरूपी नदीका सोता बढकर जितनी काट करता जाता है, थावलेरूप हृदयमें प्रेमका वृक्ष उतना उतनाहीं दृढ होता जाता है कटन—किनारेका काटना 'विरोधाभास'२९५॥

बाल बेलि सूखी सुखद, इहि रूखे रुख घाम ।
फेरि डहडही कीजिये, सुरस सींचि घनश्याम ॥

बेलीके समान वह सुखदायक बाला तुम्हारे रूखे पन-की धूपसे सूखगई है हे घनश्याम अब उसे सुरससे सींचकर हरी कीजिये घाम—धूप। घनश्याम-कृष्ण या मेघ। रस—जल-और प्रीति। 'परिकरांकुर' ॥ २९६ ॥

देखत बुरै कपूरलौं, उडैजाय जिनलाल ।
छिन छिन जातपरीखरी, छीन छबीलीबाल २९७

हेलाल वह छबीली क्षणक्षणमें क्षीण पडती जातीहै, देखते देखते न्यून हुई जातीहै, कहीं कपूरके समान उडनजाय विरह निवेदन 'पूर्णोपमा वीप्सा' ॥ २९७ ॥

कहा कहौं वाकी दशा, हरि प्राणनके ईश ।
विरहज्वाल जरबो लखै, मरिबोभयो अशीस २९८

हे प्राणवल्लभहरि ! मैं उसकी दशा क्याकहूं विरह अग्निमें जलना हुआ देख उसके लिये मरनाही आशीर्वादहै 'लेशालंकार' ॥ २९८ ॥

हरि हरि बरि बरि करि उठति, करि करि थकी उपाय।
वाको ज्वर बलि बैद ज्यों, तोरस जाय तौ जाय २९९

हे प्रीतम वियोगमें वह हरिहरि बलि अर्थात् जली २ कह उठती है, हम उपायकर हारगईं उसकी ताप बली बैदकी भाँति तुम्हारे रस (प्रेमभरे वाक्य पक्षान्तरमें फुंकीधातु) से जाय तो जाय 'वृत्यनुप्रास और श्लेष' ॥ २९९ ॥

यह विनशत नगराखिकै, जगत बडो यशलेहु ।
जरीविषमज्वर जाय यह, आय सुदर्शन देहु ३००

यह स्त्रीरूपी रत्न नाश होताहुआ रखकर जगतमें यशलो वियोगरूपी विषमज्वरसे जली जाती है, आनकर अपना सुन्दर दर्शन दीजिये, सुदर्शन चूर्णभी विषमज्वरपर प्रसिद्ध है, सो दर्शनरूपी चूर्ण माँगती है 'श्लेषालंकार' ॥ ३०० ॥

विहारीकी सतसईमें पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासहित तीसरा शतक पूर्ण हुआ ३ शुभमस्तु ।

नैक न जानी परत यों, पर्यो विरह तनु छाम ।
उठति दियालों नाहिं हरि, लिये तुम्हारो नाम ॥

वह कुछ भी जानी नहीं जाती विरहसे शरीर उसका क्षीण होगया है परन्तु तुम्हारे नाम लेनेसे दियेके समान चैतन्य हो उठती है । 'उपमालंकार' ॥ ३०१ ॥

मैं ले दयो लयो सुकर, छुवति छनकिगो नीर ।
लाल तिहारो अरगजा, उरलगि भयो अबीर ३०२

मैंने जो तुमसे लेकर प्रियाको दिया सो उसने सुन्दर हाथमें ग्रहणकिया, उसके हाथमें छूतेही पानी जलगया है लाल! तुम्हारा दिया अरगजा उसके हृदयमें लगकर अबीर होगया पानी सूखकर श्वेतता होगई विरह वर्णन। "अयुक्तालंकार" ॥ ३०२ ॥

हितकरि तुम पठयो लगै, वा विजनाकी बाय ।
टरी तपन तनकी तऊ, चली पसीना न्हाय ॥ ३०३ ॥

तुमने जो प्रेमकर पंखा भेजा उसकी पवन लगनेसे शरीरकी गरमी तो गई परन्तु पसीनेमें न्हागई सात्त्विकभाव प्रगट होनेसे पसीना आया। 'पंचम विभावना' ॥ ३०३ ॥

हँसि उतार हियते दई, तुम जो तादिन लाल ।
राखत प्राण कपूरलों, वहै गुंजकी माल ॥ ३०४ ॥

आपने जो हँसकर उस दिन हृदयसे उतारकर माला दी है हे कृष्ण! वही चौटलीकी माला उसके प्राणोंको कपूरकी भाँति रक्षा करती है कपूरमें चौटली रखनेसे कपूर नहीं उड़ता इसीप्रकार तुम्हारी मालासे उसके प्राण रक्षित हैं। 'काव्यलिङ्ग' ॥ ३०४ ॥

होमति सुख करि कामना, तुमहि मिलनकी लाल ।
ज्वालमुखीसी जरत लखि, लगनि अगिनिकी ज्वाल

हे कृष्ण! (वह विरहनी तुम्हारे अनुरागमें) तुम्हारे मिलनेकी कामनासे सुखको होमती है प्रीतिकी आगकी लपटमें मैंने उसे ज्वालामुखीके समान जलते देखाहै अथवा लगनरूपी अग्निकी ज्वाला ज्वालामुखीसी जलती है, 'सविषय-सावयव' ॥ ३०५ ॥

थाकी यतन अनेक करि, नेक न छाँडति गैल ।
करी खरी दुबरी सुलगि, तेरी चाहचुरैल ॥३०६॥

हम अनेक यत्न करके थकगई, परन्तु वह नेकभी पीछा नहीं छोडती तुम्हारी चाहरूप चुडेलने चिपटकर उसे अति दुर्बल करदिया है ॥ ३०६ ॥

लाल तिहारे विरहकी, अगिनि अनूप अपार ।
सरसे बरसे नीरहूं, झरसे मिटै न झार ॥३०७॥

हे लाल ! तुम्हारे विरहकी अग्नि अनूप और अपार है बरसे पानीकी भांति बढती है और झडसे लपटभी नहीं मिटती अद्भुत रसमें विरहनिवेदन है 'पंचम विभावना' ॥ ३०७ ॥

जो वाके तनुकी दशा, देखो चाहत आप ।
तो चलि नेकविलोकिये, चलिऔचक चुपचाप ॥

हे कृष्ण ! जो उसके शरीरकी दशा आप देखना चाहते हो तो चुपचाप औचक चलकर देखिये [बलि—बलिहारी जाऊँ] काव्यलिंग संभावना । आशय यह कि, तुम्हें देख मोटी होजायगी ॥ २०८ ॥

लई सौंहसी सुननकी, तजि मुरली धुनि आन ।
कियेरहतनितरातदिन, कानन लागे कान२०९॥

वंशीकी टेर सुनकर मानों और बातके सुननेकी इसने सौगंधसी खारक्खी है रात दिन वंशीका ध्यान वनकी ओर कान लगाये किये रहते हैं । 'उत्प्रेक्षा' ॥ २०९ ॥

उर लीने अति चटपटी, सुनिमुरलीधुनिधाय ।
हौं हुलसी निकसीसुतौ,गो हुलसी हियलाय३१०

मुरलीकी ध्वनि सुन हृदयमें अति चटपटी किये भागमान हुई ज्यों मैं प्रसन्न हो घरसे निकली सो वह मगन हुई मेरी छातीमें हुलसी लगाकर गये । 'जमकालंकार' ॥३१०॥

सुनति न ताल स्तानकी, उठै न सुर ठहराय ।
एरी राग बिगारिगो, बैरी बोल सुनाय ॥ ३११ ॥

तालके स्वरकी सुनत नहीं सुर ठहरके नहीं उठत; एरी सखी वह बैरी अपना बोल सुनाकर मेरा राग बिगाड़गया.

अर्थात् स्वर भंग हुआ और शब्द सुनाकर जो प्रीतम न ठहरे इससे वैरी कहा । " छेकानुप्रास " ॥ ३११ ॥

चितवन भोरे भायकी, गोरे मुख मुसक्यान ।
लगनि लटकिआली गरे, चितखटकतानितआन॥

उसका भोरे भायसे देखना, और गोरे मुखकी मुसकान लगना लगाना लटकके सखीके गरे यह बात नित्य मेरे शरीरमें आनकर खटकती है । 'स्वभावोक्ति' ॥ ३१२ ॥

क्षण क्षणमें खटकत सुहिय, खरी भीरमें जात ।
कही जु चलि बिनही चितै, ओठनहीमें बात ३१३

क्षण क्षणमें वह बाला मेरे मनमें खटकती है, बड़ी भीरमें जाते हुए वह देखकरहोठोंहीमें बातकहकरचली।'स्मृति' १३३

चिलक चिकनई चटकसों, लफति सटकलोंआय।
नारि सलोनी साँवरी, नागनिलों डसिजाय॥ ३१४

चसक चिकनाईकी चटकसे लचकती हुई पतली छड़ीके समान आकर वह सांवरी सलोनी बाला नागिनिके समान डस जाती है; आशय यह कि, प्रिया बिना मन व्यग्र है । 'पूर्णोपमा' ॥ ३१४ ॥

डग कुडगातिसी चलि ठठक, चितई चली निहारि।
लियेजात चित चोरटी, वहै गोरटी नारि ॥ ३१५॥

डग मग पैरसे डिगती हुई एक पग चलकर ठिठकगई और फिर मेरी ओर देखा, वह चोट्टी गोरी नारी मेरा चित्त चुराये लिये जातीहै। 'स्वभावोक्ति' अथवा ठिठकती हुई थान छू-कर चली आधी चितवनसे देखा, इत्यादि ॥२१५॥

भौंह उँचे आँचर उलटि, मोरि मोरि मुख मोर।
नीठ नीठ भीतर गई, दीठि दीठिसों जोर॥२१६॥

भौंहकी चेष्टा ऊँची कर आँचरको उलट एंडाय जँभाय-कर वा घूमकर—किसी भांति दृष्टिसे दृष्टि जोरकर भीतरको गई। 'स्वभावोक्ति' ॥ २१६ ॥

रहो मोह मिलनो रहो, यों कहि गहो मरोर।
उत दै सखिहि उराहनो, इत चितई मो ओर २१७

अब हमारी तुम्हारी प्रीति और मिलना हो चुका, यों कहकर मरोर की; इधर सखीको उरहना दिया और इधर मेरी ओर देखा। 'गूढोक्ति' ॥ २१७ ॥

चुनरी श्याम सुतार नभ, मुखशशिकी अनुहारि।
नेह दबावत नींदलों, निरखि निसासी नारि ३१८॥

रात्रि और बालाका रूपक, काली चूनरी श्वेत सितारोंदार मानो तारोंसहित आकाश है, मुख चंद्रमाके समान है, इसमें

उस (निसानी) रात्रिके समान स्त्रीको देखा है तबसे नींदके समान उसकी प्रीति मुझे अचेत करती है। 'रूपक' ॥ ३१८ ॥

फेर कछूकरि पौरते, फिरि चितई मुसक्याय।
आई जामन लेनको, नेहै चली जमाय ॥ ३१९ ॥

फिर कछ करके उसने पौरीसे लौट पीछे फिर मुसकाकर देखा जामन लेनेको आईथी पर प्रीतिको जमाचली। असंगति और 'पर्यायोक्ति' ॥ ३१९ ॥

देह लगी ढिग गेहपति, तऊ नेह निरवाहि।
ढीली अँखियनही इतै, गई कनखियन चाहि ३२०

मेरे शरीरसे लगा हुआ उसका पति मेरे निकट था, तौ भी वह अपनी प्रीति निबाह गई, अर्थात् ढीली आंखोंसेही कनखियोंद्वारा इधर देखगई। 'पंचमविभावना' ॥ ३२० ॥

लहि सूने घर कर गहो, दिखा दिखीकी ईठि।
गड़ी सुचित नाहीं करत, कर ललचौंही दीठि ३२१

सूना घर देखकर मेरा हाथ पकड लिया, देखा देखीका इष्टकर हाथ पकड़नेपर वह नाहीं करती है और लालच भरी दृष्टि करके चित्तमें गड़ी है ॥ ३२१ ॥

कालबूत दूती विना, जुरै न और उपाय।
फिर ताके तारे बनै, पाके प्रेम लदाय ॥ ३२२ ॥

प्रेमरूपी लदावका निर्वाह कालबूतरूप दूतीके बिना और उपायसे नहीं मिलता, और प्रेम लदायके पकनेसे फिर उसका टालनाही बनता है।'रूपकालंकार' अर्थात प्रेम उत्पन्न करदेना दूतीका कार्य है प्रेम होजानेपर उसकी आवश्यकता नहीं ॥ २२२ ॥

तोपर वारों उरवसी, सुन राधिके सुजान ॥
तू मोहनके उरवसी, है उरवसी समान ॥२२३॥

हे सुजान राधिके! मैं तुझपर उरवसी बलिहारी करतीहूं, तू मोहनके हृदयमें बसी उर्वशीके समान है. यहां उरवसीसे लक्ष्मी और हमेलके समान है जैसे उनके हृदयमें लक्ष्मी निवास करती है इस प्रकार तू है और जैसे छातीपर धुकधुकी होती है ऐसे तेरी सौत है परन्तु तू विशेष है। 'जमक' ॥ २२३ ॥

तू मोहनमन गडरही, गाढ़ी गड़नि गुवालि ।
उठै सदा नटसाललौं, सौतिनिके उर आलि ॥२२४॥

हे ग्वालिनी ! तू मोहनके मनमें गाढ़ी गड़नेसे गड़रही है और तू सौतोंके हृदयमें सदा टूटे कांटेकी भांति कसक-ती है. अर्थात् गड़ी मोहनके हृदयमें कसकती सौतोंके है। 'असंगति अलंकार' ॥ २२४ ॥

पियमन रुचि ह्वैबो कठिन, रुचि न होत शृंगार ।
लाख करो आँखि न बढ़े, बढ़े बढ़ाये बार ॥ ३२५ ॥

प्रीतमके मनमें रुचि होनी कठिन है; शृंगारको रुचि नहीं होती. लाख करो आंखिनहीं बढ़ैगी, बढ़ानेसे विलम्ब बढ़ैगा। अभिसारके निमित्त देर होतेमें सखी वचन अथवा लाख यत्न करो बढ़ायेसे आंख नहीं बढती परन्तु विलम्ब बढ़ताहै-आशय यह कि,बाला सौतनको शृंगार करते देख मनमें विचारने लगी कि, प्रीतमका मन इससे न लगजाय उसपर सखीने सावधान किया । 'दृष्टान्तालंकार'॥ ३२५ ॥

जालरंध्रमग अगानिको, कछु उजाससों पाय ।
पीठ दिये जगसों रहै, दीठि झरोखा लाय॥ ३२६ ॥

झरोखोंके छिद्रोंके मार्गमें कुछ उजालासा पाकर झरोखेमें दृष्टि लगाय जगके लोगोंसे मुख फेरे रहतीहै;आशय यह कि, सबसे मुख फेर आपहीके देखनेकी अभिलाषा कियेरहती है । 'परिसंख्या' ॥ ३२६ ॥

यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपकदेह ।
तऊ प्रकाश करैतितो, भरिये जितो सनेह ३२७

प्रीति बढ़ानेका कारण सुन्दर घर (घट) गुणसहित है और दीपकसी देह है तौभी उतनाही प्रकाश करताहै जितना

उसमें तेल(प्रेमसे नेह)डालाजाय गुणकका अर्थ वत्ती और गुनहै। 'श्लेषरूपकालंकारसंकर' ॥ २२७ ॥

शनिकज्जल चखझखलगनि,उपजो सुदिन सनेह।
क्यों न नृपति ह्वै भोगये,लहि सुदेश सब देह २२८

काजलही शनि,नेत्र मछली अर्थात् मीन लग्नमें अच्छे दिनमें सनेह हुआ, फिर तू राजा होकर इसके शरीररूपी सुन्दरदेशका भोग क्यों नहीं करे, यह लग्नग्रह इस निमित्त भलेहैं 'रूपकालंकार' ॥ २२८ ॥

लखि लौने लोयननिपै, कोयन होय न आज।
कौन गरीबनिवाजिबो,कित तूठो रतिराज २२९

इन नेत्रोंके सलोने कोयोंको देखकर कौन वशीभूत न होगा आज किस गरीबको निवाजेगा, आज कामदेव किसपर संतुष्ट हुआ तूठा-तुष्ट हुआ कहांवाला। 'वृत्त्यनुप्रास' ॥ २२९ ॥

लागत कुटिलकटाक्षशर,क्यों न होय बेहाल।
निकसत हियो दुसालकर,तऊ रहतनटसाल २३०

यह कुटिल कटाक्षके बाण लगनेसे क्यों न प्रीतम बेहाल हो यद्यपि कलेजेमें लगकर पार होजातेहैं, तौभी फांसकी समान खटकतेहैं। 'विभावना' ॥ २३० ॥

नागरि विविध विलास तजि, बसी गवेलन माँहि ।
मूढोंमें गनिबो करै, हूठो द अठिलाहि ॥२३१॥

हे नागरि ! तू अनेक विलास त्यागन कर गँवारियोंमें आनकर बसी है यह तुझे मूर्खोंमें गिनकर धक्का दे इठलाती है । 'पर्यायोक्ति' प्रिया मानकर गँवारियोंमें जाबैठी वहां सखीने कहा ॥ २३१ ॥

रही लटू ह्वै लालहों, लखिबो बाल अनूप ।
कितो मिठास दियो दई, इते सलौने रूप ॥२३२॥

हे लाल ! मैंभी तो उसका अनूपरूप देखकर लट्टू होगई, विधाताने उसके सलौने रूपमें कितना मिठास दिया है । 'विरोधाभास' ॥ २३२ ॥

तीजपरब सौतिन सजे, भूषण वसन शरीर ।
सबै मरगजे मुखकरी, वही मरगजे चीर ॥२३३॥

सावनकी तीजके त्यौहारमें सौतोंने शरीरपर भूषण वस्त्र सजाये, परन्तु प्यारीने उसी मिलगिजे वस्त्रसे सबका मुख मर्दित करादिया, अर्थात् जो बात और शृंगार करके नहीं प्राप्त करसकती, वह यह मिलगिजे वस्त्रसे करती है ॥२३३॥

सोहत धोती श्वेतमें, कनकवरण तनु बाल ।
शारदवारद बीजरी, भारद कीजतु लाल॥२३४॥

हेलाल। श्वेतधोतीमें उस बालाका सुवर्णके समान शरीर शोभायमान होता हुआ शरद् ऋतुके मेघोंमें बिजुलीकी शोभाको मात करताहै। प्रतीप और वृत्त्यनुप्रास ॥२२४॥

हों रीझी लखि रीझिहो, छबिहि छबीले लाल।
सोनजुहीसीहोतिद्युति,मिलत मालतीमाल ३३५

मैं तो रीझीहूं और तुमभी उसकी छबिको देखकर रीझोगे हे छबीले लाल। चमेलीकी माला पहरनेसे उसकी शोभा सोनजुहीसी होतीहै। तद्गुणालंकार ॥ २२५ ॥

क्षणक छबीले लाल वह, ज्योंलगि नहिं बतराय।
ऊप मयूख पियूषकी,तौलगि भूँख न जाय ३३६

हे छबीले कृष्ण! एक क्षणको जब तक वह नहीं बोलती तब तक गन्ना, मधु, और अमृतरसकी भूंख नहीं जाती। वृत्त्यनुप्रास ॥ २२६ ॥

टोरी लाई सुननकी, कहि गोरी मुसकात।
थोरी थोरी सकुचसों, भोरी भोरी बात ॥३३७॥

मुग्धाकी बात सुननेकी रट लगाई औ मुसकाती है और गोरी बाला थोरी थोरी सकुचसे भोरी भोरी बात कहती है। छेकानुप्रास और उपमा॥ २२७॥

नेको उहि न जुदी करी, हरष जु दी तुम माल ।
उरते वास छुटो नहीं, वास छुटेहूं लाल ॥ ३३८॥

जो माला तुमने प्रसन्न होकर उसे दी उसे उसनें क्षणमात्र कोभी हृदयसे अलग न किया, हे लाल! उसकी सुगंधि जातीरही परन्तु हृदयसे उसका वास न छूटा। जमक॥३३८॥

मोहिं भरोसो रीझिहैं, उझक झांकि इकबार ।
रूप रिझावनहार यह, ये नैना रिझवार ॥३३९॥

मुझे भरोसा है कि, तू एकहीबार उझककर झाँकैगी तो रीझैगी अर्थात् एकबार तू खिडकीमें झांककर तो देख उनका रूप रिझानेवाला है, और तेरे नेत्र रीझनेवाले हैं। समालंकार ॥ ३३९ ॥

ल्याई लाल विलोकिये, जियकी जीवनमूल ।
रही भौनके कोनमें, सोनजुहीसी फूल ॥३४०॥

हे कृष्ण! मैं लेआईहूं चलकर अपनी जीवनमूलको देखिये वह भवनके कोनेमें सोनजुहीसी फूल रही है। उपमा ॥ ३४० ॥

नहिं हरिलों हियरा धरो, नहिं हरलों अरधंग ।
एकतहीं करिराखिये, अंग अंग प्रतिअंग३४१॥

हे कृष्ण ! न तो विष्णुके समान उसके हृदयपरही लक्ष्मी के समान रक्खो न शिवके समान अर्धंग धारण करो किन्तु उसके अंग अंग अपने अंग अंग मिलारखिये । दूषणोपमा ॥ ३४१ ॥

रही पैज कीन्ही जु मैं, दीन्ही तुम्हें मिलाय ।
राखो चम्पकमालसी,लाल हिये लपटाय॥३४२॥

जो मैंने पैज की थी सो पूरी की,तुम्हें मिलादिया हे लाल! अब चम्पकमालासी हृदयमें लगाकर इसे रक्खो । उपमेयलुप्तालंकार ॥ ३४२ ॥

केवारावत यहि गली, रहे चलाय चलैन ।
दरशनकी साधे रही,सूधे रहत न नैन ॥ ३४३ ॥

हेप्यारी। मैंने उन्हें कईवार इस गलीमें आते देखा चलने की इच्छा करें पर न चलें दर्शनकी अभिलाषा करते हैं इस कारण नेत्र सूधे नहीं रहते आशय यह कि, जब वह गलीमें आते हैं तब तो सूधे नेत्र मन्दिरके सन्मुख लगे रहते हैं और जब मंदिरसे आगे चलते हैं तब मंदिरकी ओर होजाते हैं । हेतु अलंकार ॥ ३४३ ॥

स्वप्नदर्शन ।

देख्यो जागत वैसिये, साँकर लगी कपाट ।
कित ह्वै आवत जातभजि,को जानै केहि बाट ३४४

जागतेहुए देखा कि, किवाँड़में वैसीही साकर लगी है कौन जाने किधर होकर आते हैं और किस मार्गसे भगजातेहैं । विभावना ॥ ३४४ ॥

सुखसों बीती सब निशा, मनु सोये इकसाथ ।
मूकामेलि गह्यो जु छिन, हाथ न छोड़त हाथ ३४५

सारी रात सुखसे बीती मानो एकसाथही सोये हैं मूके में डालकर हाथ जो पकड़ा सो एक क्षणमात्रको भी नहीं छोड़ा मूका-मोखा भट्टा अथवा स्वप्न उनको देखतेमें सुखसे सब रात बीती मानों एक साथही सोये हैं अपने हाथसेही जो अपना हाथ पकड़ा उसे उनका जानकर एक क्षणमात्र को न छोड़ा । उत्प्रेक्षा ॥ ३४५ ॥

दुचितैचितहलतिन चलति, हँसतिनझुकतिविचारि
लिखितचित्र पियलखिचितै, रही चित्रलों नारि॥

चित्त दुचिताईमें होरहा है न हलती है न चलती है न हँसती है न विचारकर क्रोध करती है प्रीतमको चित्र लिखता देख प्यारी स्वयं चित्रके समान होगई दुचितै मन इस कारण है कि, मेरी मूर्त्ति लिखै हैं वा अन्यकी हलने चलनेकी आहट होगी इसकारण नहीं हिलती अपनीही है यह निश्चय न होनेसे हँसती नहीं, और दूसरीकी कदाचित् न हो यही विचार क्रोध नहीं करती । संशयालंकार ॥ ३४६ ॥

कर मुँदरीकी आरसी, प्रतिविम्बो पिय आय ।
पीठ दिये निधरक लखै, इकटक दीठि लगाय ३४७

हाथकी अँगूठीकी आरसीमें प्रीतमका प्रतिविम्ब आनकर पड़ा उसको पीठ दिये निधडक इकटक दृष्टि लगाये देख रही है । प्रहर्षणालंकार ॥ ३४७ ॥

ध्यान आनि ढिग प्राणपति, मुदित रहत दिनरात।
पल कम्पित पुलकत पलक, पलक पसीजत जात

प्राणपतिको ध्यानमें ही अपने निकट लाकर दिनरात प्रसन्न रहती है पलमें पुलकायमान होती काँपती और पलमें पसीजती है । स्मृति अलंकार ॥ ३४८ ॥

पियके ध्यान गही रही, रही वही ह्वै नारि ।
आप आपही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ३४९॥

प्रीतमका ध्यान धर धरकर वह स्त्री आप ही आप हो-कर रही और वह रिझवारि आपही अपनी आरसी को देख रीझने लगी । तद्गुणालंकार ॥ ३४९ ॥

लाल तिहारे रूपकी, कहो रीति यह कौन ।
जासों लागे पलकदृग, लागत पलक पलौ न ३५०

हे लाल! कहोतो तुम्हारे रूपकी यह कौनसी रीति है जिस

जिससे एक पल नैन लगते हैं उसकी पलक फिर एक पलको नहीं लगती । विरोधाभास ॥ ३५० ॥

अपनी गरज न बोलियत, कहा निहोरोतोहि ।
तू प्यारो मो जीयको, मोजी, प्यारो मोहि॥ ३५१ ॥

अपनी गरजसे बोलते हैं इसमें मेरा क्या निहोरा है तुम मेरे जीके प्यारेहो और तुम्हें मेरा जी प्याराहै । काव्य लिंग ३५१

तोही निरमोही लग्यो, मोही यहै सुभाय ।
अन आये आवै नहीं, आये आवत आय ३५२

तुम्हारा मन निर्मोही है, तुमसे मेरा मन लगगया है मेरे मनका यह स्वभाव हुआ कि, तुम्हारे पास रहकर विना तुम्हारे आये नहीं आता, और आनेसे आता है इससे तुम आओ । जमक ॥ ३५२ ॥

छुटन न पैयत क्षणकवश, नेहनगर यह चाल ।
मारे फिर फिर मारियत, खूनी फिरत खुसाल ३५३

नेहनगरकी यह चाल है कि, इससे एक क्षणको छुटकारा नहीं होता, मरा हुआ फेर फेरकर मारा जाता है और मारनेवाला प्रसन्न फिरताहै । असंगति ॥ ३५३ ॥

निरदय नेह नयो निरखि, भयो जगत भयभीति।
यह अबलों न कहूं सुनी, मरे मारियत भीति ३५४

निर्दयतायुक्त नेह देखकर जगत् भयभीत होगया है यह बात अबतक कहीं नहीं सुनी कि, मरे हुए मित्रको फिर मारे। पर्यायोक्ति ॥ २५४ ॥

दुखदायिनि चरचा नहीं, आनन आनन आन।
लगी फिरति ढूकादिये, कानन कानन कान २५५

दुःखदायिनियोंके मुखसे और चरचा नहीं है सौगंधकर कहती हूं मेरे पीछे छिपी हुई फिरती हैं कुंजवनमें कान लगाये रहती हैं कानन—वन। आनन—मुख। आन—सौगंध। जमक और वीप्सा ॥ २५५ ॥

बहके सब जियकी कहत, ठौर कुठौर गिनै न।
छिन औरै छिन औरसे, ये छबिछाके नैन २५६

बहके हुए सब जीकी बात कह देतेहैं, ठौर कुठौर नहीं गिनते, यह प्रीतमकी छबिसे छके नैन छिनमें और, और छिनमें और होते हैं। भेदकातिशयोक्ति० ॥ २५६ ॥

नेक उतै उठि बैठिये, कहा रहे गहि गेहु।
छुटीजात नहँदी छिनक, महँदी सूखन देहु २५७

नेक उधरको उठ बैठो क्या घर पकड़ें हुएसे बैठे हो तुममें दो हाथसे मेहँदी छुटी जाय है तनक इसे सूखने तो दो, आशय यह कि तुम्हें देख सात्त्विक होता है सो सात्त्विक

हो हाथ पसीजते हैं इससे तुम उठजाओ तो महँदी सूखे । हेतु विकृति० ॥ ३५७ ॥

चितवनि रूखे दृगनिकी, हाँसी बिन मुसिकान ।
मान जनायो माननी, मानलियो पियजान ३५८

सूखे नेत्रोंकी चितवन और बिनमुसकानकी हांसीसेही प्रीतमको माननीने मान बताया, और चतुर प्रीतमने जान-लिया । लाटानुप्रास ॥ ३५८ ॥

पति ऋतु अवगुण गुणबढत, मान माँहको शीत ।
जात कठिनह्वै अतिमृदौ,रमणीमननवनीत ३५९

पतिके अवगुणसे मान और ऋतुके गुणसे माहका शीत बढता है रमणीका मन और मक्खन अति कोमलहै तथापि कठिन हो जाता है । दृष्टान्तरूपक ॥ ३५९ ॥

वाही निशितें ना मिटो, मान कलहको मूल ।
भले पधारे पाहुने, है गुडहरको फूल ॥ ३६० ॥

उसी रातसे क्लेशका मूल मान नहीं मिटा गुडहरके फूल के समान होकर पाहुने भले पधारे हैं आशय यह कि, रात-को कहीं और रहकर सबेरेको रतिचिह्नसे युक्त माथेपर महावर पलकों में पीकादि लगाकर प्रीतमआये इस कारण

गुडहरका फूल कहा है कि, जहां यह रहता है वहां क्लेश रहता है। वाचकलुप्ता लोकोक्ति ॥ ३६० ॥

खरे अदब अठिलाहटी, उर उपजावत त्रास ॥
दुसहशंक विषकी करै, जैसे सोंठमिठास ॥३६१॥

प्यारीका सभ्यतासे इठलानाभी मेरे मनमें दुःख उपजाता है जैसे सोंठका मिठास विषकी दुःसह शंका उत्पन्न करताहै सोंठका मिठास विषयुक्त जानना। दृष्टान्त ॥ ३६१ ॥

दोऊ अधिकाई भरे, एकै गो गहराय ॥
कौन मनावै को मनै, मानै मति ठहराय॥३६२॥

दोनों पियप्यारे गर्वभरे एकही गोंकी बात करते हैं कौन मनावे कौन मने जब इनकी मति ठहरावेगी तब आपही मनेंगे प्रणयके कलहको मान कहते हैं। काव्यलिंग ॥ ३६२ ॥

हँसि हँसाय उर लाय उठि, कहि न रुखौंहैं बैन।
जकित थकितसे ह्वैरहे, तकत तिरीछे नैन॥३६३॥

हँसकर हँसाकर उसे हृदयसे लगाय उठ रूखे वचन मत कहो दुःख जकड़े और थकेसे होकर नेत्र तिरछे नयोंको प्रीतम देखरहे हैं। वृत्त्यनुप्रास ॥ ३६३ ॥

मान करत बरजत नहीं, उलटि दिवावत सौंह ।
करैं रिसौंहीं जायगी, सहजहँसौंहीं भौंह ॥३६४॥

मान करतेमें बरजती नहीं और उलटी सौंह दिवाती है क्या तुम यह स्वभावसे हँसौही भौंहें रिसभरी करेही जाओगी मान दृढ करनेको सखीने यह वचन कहे । काकोक्ति छेकानुप्रास ॥ ३६४ ॥

जो चाहत चटक न घटै, मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त॥ ३६५॥

हे मित्र! जो तुम चाहो कि, प्रेमकी चमक न घटै और मित्र का मन अप्रसन्न न हो तो नेहसे चिकने हुए चित्तमें रजोगुणकी धूरि मतछुवाओ आशय यह कि प्रीतमपर आज्ञाबल मतचलाओ श्लेषालंकार ॥ ३६५ ॥

सोहैंहूं चाह्यो नतैं, किती दिवाइ सौंह ॥
एहो क्यों बैठीकिये, ऐंठी ग्वैंठी भौंह ॥ ३६६॥

तैंने मानसे प्रीतमके सन्मुखभी न देखा, मैंने कितनी सौगंधभी दिवाईं, फिर अब क्यों टेढी गढीली भौंहकिये बैठी है। वृत्यनुप्रास ॥ ३६६ ॥

खरी पातरी कानकी, कोन बहाऊबानि ॥
आककलीन रलीकरे, अली अलीजियजानि ३६७

हे सखी ! तू कानकी बहुत हलकी है जो कोई बात कहै उसे तू मान जाय है इस तेरी बान स्वभावमें बहाऊँ हे आली

तू अपने मनमें विचार करले कि, भौंरा आककी कलीसे विहार नहीं करता है नायकको अन्यसे रति करनेवाला जान प्यारीने मान किया इसपर सखीने समझाया। छेकानुप्रास जमक ॥ ३६७ ॥

तो रस राच्यो आन वश, कहै कुटिल मति कूर॥
जीभ निवौरी क्यों लहै, बौरी चाख अँगूर ३६८॥

वह तो तेरे रसमेंही रँगरहे हैं उन्हें औरके वश किसी खोटे मतिवाले क्रूरने कहाहै यह सत्य मत जाने, हे बावली! जिसने अंगूर खाये हैं इसकी जीभमें निवोली क्यों भावेगी। न्यासा-लंकार ॥ ३६८ ॥

गहिरी गरब न कीजिये, समय सुहागहि पाय॥
जीकी जीवन जेठलों, माह छांह सुहाय ३६९

हे मानिनी! समय समय सुहाग पाकर बहुत मान मत करो जेठ महीनेकी जीकी जीवनछाया माहमें अच्छी नहीं लगती गहरी—वा गहली-मानिनी। दृष्टान्तालंकार॥ ३६९॥

बहकि बड़ाई आपनी, कत राचत मतिभूल।
विनमधु मधुकरके हिये, गड़ै न गुडहरफूल ३७०

बहककर अपनी बड़ाईसे हे मतिभूल! क्यों प्रसन्न होती है? सुन्दरभी है परन्तु रसके विना भौंरेके हृदयमें गुड़-

हरका फूल नहीं भाता ' अथवा यह मतिकी भूल है जो अपनी बडाईसे प्रसन्न होय है माननीके निकट सौत प्रसन्न हो आकर बैठी थी उसपर सखीने कहा ' अथवा मूर्खोंमें अपनी बड़ाईसे प्रसन्न होनेपर । अन्योक्ति ॥ ३७० ॥

अनियारे दीरघनयन, किती न तरुणिसमान ।
वह चितवनि औरेकछू, जिहिंवशहोतसुजान ३७१

नोकीले और दीर्घनेत्रोंकी कितनी एक स्त्री;समान होती है परन्तु जिसके वश चतुर होते हैं वह चितवन कुछ औरही हैं । भेदकातिशयोक्ति ॥ ३७१ ॥

हाहा वदन उघार दृग, सफल करै सब कोय ।
रोज सरोजनके परै, हँसी शशीकी होय॥ ३७२॥

रात्रिके समय दूतीने प्यारीसे कहा, हा कष्ट! अथवा हाहा खाऊं तनक मुख तो उघार सबही कोई अपने नेत्र सफल करैं तेरे मुख उघाडनेसे कमलोंको शोक होगा और चन्द्रमाकी हँसी होगी आशय यह है कि, तेरे मुखचंद्रसे कलंकित चंद्र हास्य को प्राप्त होगा कमल कुँभिलायेंगे तेरा मान छुटनेसे मुख उघडेगा तो यह सब वार्ता होंगी ॥ ३७२ ॥

कहालेहुगे खेलमें, तजौ अटपटी बात ।
नेक हँसौहीं है भई, भौंहैं सौहैं खात ॥ ३७३ ॥

खेलमें क्या लोगे अपनी अटपटी बात छोडो मेरे शपथ करते करते प्यारीकी भौंहें कुछ हँसौहीं हुई हैं आशय यह कि, प्रीतम मनाने आये तो दूसरीकाही नाम निकल गया इससे फिर प्यारी रूठी इसपर सखीने हँसीमें डालकर कृष्णसे कहा ये चिढानेकी बातें छोडदो । हेतु ॥ ३७३ ॥

चलो चलै छुटिजायगो, हठि रावरो सँकोच ।
खरे चढाये होत अब, आये लोचन लोच ॥ ३७४॥

हे प्रीतम ! चलो तो आपके चलनेसे सब हठ छुटजायगी तुम्हारे संकोचसे जो अति चढायेथे वे नेत्र अब नरमीपर आये हैं अर्थात् इस समय कुछ क्रोध न्यून हुआ है चलनेका समय है शीघ्र चलो ॥ ३७४ ॥

अनरसहूँ रस पाइये, रसिक रसीली पास ।
जैसे सांठकी कठिन, गाँठें भरी मिठास ॥ ३७५॥

हे प्रीतमरसिक ! उस रसीलीके पास चलनेसे अनरसमें भी रस पाओगे जैसे गन्नेकी गाँठें कठिन हैं परन्तु मिठासमें भरी हैं आशय यह कि, उसका मानभी देख प्रसन्न होगे । दृष्टान्ता-लंकार ॥ ३७५ ॥

कयौंहूँ सब बात न लगै, थाके भेद उपाय ॥
हठ दृढ गढ गढवै सुचलि, लीजै सुरँग लगाय॥ ३७६

किसी प्रकारकी हमारी बलकी बात नहीं लगती, हम भेद और उपायसे हारगईं, वह दृढ हठ किला ग्रहण कर बैठगई है उसे सुरँग लगाय कर लीजे। भेद—साम दाम दण्ड भेद यह चार हैं ॥ ३७६ ॥

सकत न तब ताते वचन, मो रसको रस खोय ।
क्षण क्षण औटे क्षीरलौं, खरो सवादल होय ३७७॥

शठ नायकका वचन अधीरा माननी नायकासे, तेरे तत्ते वचन मेरे अनुरागके स्वादको नहीं दूर करसकते मेरा प्रेम क्षण क्षणमें औटे दूधके समान अति स्वादिष्ट होता है अर्थात् मानिनी उसको दुर्वचन कहती है और वह उसको सुन प्रसन्न होताहै । उपमालंकार ॥ ३७७ ॥

सकुचि न रहिये श्याम सुनि, यह सतरोहे वैन ।
देत रचौहे चित कहैं, नेह नचौहे नैन ॥ ३७८ ॥

हे श्याम ! यह सतरोहे क्रोधके वचन सुनकर संकोचित होकर न रहिये, प्रेमसे रंगे नेत्रही कहेदेते हैं कि, चित्त प्रेमसे रचरहा है ॥ ३७८ ॥

आये आप भली करी, मेटन मान मरोर ।
दूर करो यह देखि है, छला छिगुनियां छोर ३७९॥

आप मानकी मरोर मेटने को आये यह बहुत अच्छी करी

परन्तु यह जो किसी अन्य प्रियाका छल्ला अपने हाथकी कन उँगलीके छोरमें पहर आये हो इसे दूर करो नहीं तो प्रिया इसको देखलेगी तुम्हारा होता तो उँगलीमें भर आता। विषमालंकार ॥ २७९ ॥

सीरे जतननि शिशिरऋतु, सहि विरहिन तनु ताप।
वसबेको ग्रीपमदिनन, परो परोसिन पाप॥२८०॥

प्रोषितपतिकाकी दशा वर्णन, हे कृष्ण ! अगहन पूसके दिनोंमें शीतल उपचारोंसे वियोगिनीके शरीर की अग्नि सहन करली अब ग्रीष्म ज्येष्ठ आषाढके दिनोंमें परोसियोंको निवास करनेको दुःख पड़ा है । अयुक्तालंकार, शिशिरऋतु पूस माह ॥ २८० ॥

आडे दै आले वसन, जाडेहूकी रात ।
साहस कैकै नेहवश, सखी सबै ढिग जात॥२८१॥

जाडेकी भी रातमें बीचमें गीले कपडेको आडकर प्रेमके मारे बडा साहस करके सब सखी, उसके निकट जाती हैं अर्थात् उसके तनुकी विरहाग्निसे जलीजाती हैं । अयुक्तालंकार ॥ २८१ ॥

औंधाई सीसी सुलखि, विरहवरी विललात ।
बीचै सूख गुलाब गो, छींटौ छुई न गात ॥२८२॥

हे प्रीतम! एक सखीने जो उलट कर सीसो उसके शिरपर डाली अर्थात् विरहसे विकल हो विल्लाते हुए सीसी लुढकाली बीचमेंही गुलाब सूखगया उसके शरीरमें छींट भी न लगी । अयुक्तालंकार ॥ ३८२ ॥

जेहि निदाघ दुपहर रहै, भई माघकी रात ।
तेहि उशीरकी रावटी, खरी आवटी जात३८३॥

जेठकी दुपहरी जिस खसके बंगलेमें माघकी रात हुईरहै उस खसके बंगलेमें वियोग अग्निके मारे वह अत्यन्त औटा जाता है, एक विरह और दूसरी खसकी रावटी यह दोनों उद्दीपन हैं । विभावना छेकानुप्रास ॥ ३८३ ॥

विकसित नववल्लीकुसुम, निकसत परिमल पाय ।
परसिय जारति विरह हिय,बरसिरहेकीबाय ३८४

यद्यपि खिलते हुए नई बेलके फूलोंको परसकर सुगंधित हो निकलती है, और बरसेके पीछेकी शीतल पवनभी है तथापि स्पर्श करते ही विरही जनोंके हृदयको जलाती है बरसनेसे शीतल पुष्पोंमें लगनेसे सुगंध और बेलोंके पत्तोंमें रुककर आनेसे मन्द है । हेतु अलंकार ॥ ३८४ ॥

विरहबरी लख जोगननु, कह्यो सो उहि कैबार ॥
अरी आव भज भीतरे, बरसत आज अँगार३८५

विरहवरीने पटबीजनोंको देखकर कैवार यह बात सखी से कही अरी आउ, भजिया आज अँगारे भीतरहीं,बरसते हैं । भ्रान्ति अलंकार ॥ ३८५ ॥

धुरवा होय न अलि उठै,धुआँ धरनि चहुँ कोद ।
जारत आवत जगतको, पावस प्रथम पयोद ३८६

हे सखी ! यह बादल नहीं है पृथ्वीके चारोंओर धुआं उठरहा है यह श्रावणका पहला मेघ जगत्को जलाता आता है । अपह्नुति ॥ ३८६ ॥

पावक झरतें मेहझर, दाहक दुसह बिशेपि ।
दहै देह वाके परश, याहि दृगनकी देपि ॥ ३८७॥

हे सखी ! अग्निकी झरसे मेघकी झर विशेषकर दुःसह जलानेवाली है; उसके छूनेसे देह जलता है इसके तो नेत्रोंके देखनेसेही जलता है। व्यतिरेक जमक ॥ ३८७ ॥

मार सुमार करी खरी, अरी मरीहि न मारि ।
सींचि गुलाब घरी घरी,अरी बरीहि न बारि ३८८

एक तो कामने तीक्ष्ण मार करके उसे अति व्याकुल किया है दूसरे तू घड़ी घड़ी गुलाब छिड़ककर जलतीहुई को मत बाले 'मरीहि न मारि' इस प्रकार मरीहुई को मत मारि । वृत्त्यनुप्रास यमक ॥ ३८८ ॥

अरे परे न करै हियो, खरे जरेपर जार ।
लावत घोरि गुलाबसो, मलय मिलै घनसार ३८९

अरे इसे परे क्यों नहीं करता, अति जले हुए हृदयको क्यों जलाता है जो गुलाबसे मिला चन्दन और कपूर घोल कर लाता है आशय यह कि, एक तो मैं विरहसे जलूंहूं दूसरे यह उद्दीपन पदार्थ औरभी दुःख देते हैं। विषमालंकार ३८९

कौन सुनै कासों कहौं, सुरत विसारी नाह ।
बदा बदी जिय लेत है, ए बदरा बदराह ॥ ३९० ॥

मेरा दुःख कौन सुनै मैं किससे कहूं प्रीतमने सुरत विसार दीहै; होड़ा होड़ी करके यह कुचाली बादल मेरा जीलेते हैं; कारण यह कि, कुपथगामी निर्दयी होते हैं, यह निर्दयीही मेरा जी लेते हैं । जमकालंकार ॥ ३९० ॥

फिर सुधि दै सुधि द्याइये, यह निरदई निरास
नई नई बहुरौं दई, दई उसास उसास ॥ ३९१ ।

फिर सुधि देकर इस निर्दयी निराशने प्रीतमकी याद दिलाई फिर इसने नई नई सांस उकासदीहैं । वीप्सा जमव अलंकार ॥ ३९१ ॥

बन बाटन पिक बटपरा, तकि विरहिन मत मैन ।
कुहो कुहो कहि कहि उठत, करि करि राते नैन॥

कामदेवकी ओरका पिकरूपी बटमार वनके मार्गमें विरहियोंको देखकर लाल आँखें करकर कुहो कुहो कह उठता है । रूपकालंकार ॥ २९२ ॥

दुसहविरह दारुणदशा, रही न और उपाय ।
जात जात जिय राखिये,पियकी वात सुनाय २९३

दुसह विरहकी दारुण दशामें अब और उपाय नहीं रहा प्रीतमकी वात सुनाकर जाते जाते जियको राखिये । पर्यायोक्ति ॥ २९३ ॥

कहे जु वचन वियोगिनी,विरहविकल अकुलाय।
कियेनको अँसुआंसहित, सोवत बोल सुनाय ॥

उस वियोगिनीने जो विरहसे व्याकुलहो चिल्लाकर वचन कहे हैं उनको सोनेको जातेमें सुनाकर किसको आंसूसहित नहीं किया अर्थात् उसके शयन समय उसके दुःखकी कथाको सुनकर सब रोने लगते हैं ॥ २९४ ॥

सोरठा—मैं लखि नारीज्ञान,कररारवो निरधार यह ।
वहई रोगनिदान, वहै वैद्य औषधि वहै ॥२९५॥

मैंने उसकी नाड़ी देखकर ज्ञानसे यह निश्चय कररक्खा है वही इसके रोगका निदान (आदि कारण) वही वैद्य और वही औषधि है अर्थात् वह मिलै तो रोग जाय। हेतु॥२९५॥

विरहसुखाई देह, नेह कियो अति डहडहो ।
जैसे बरसे मेह, जरै जवासो जर जमै ॥ ३१६ ॥

वियोगने देह सुखारक्खी है प्रीतिने डहाडहा कररक्खाहै जिस प्रकार मेघ बरसनेसे जवासा सूखताहै परन्तु उसकी जड़ डहडही होतीहै । दृष्टान्त ॥ ३१६ ॥

दो०—कहाभयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ ।
उडीजात कितहू गुडी, तऊ उडायक हाथ ३१७ ॥

क्या हुआ जो इस समय हम बिछडतेहैं मेरा मन तो तुम्हारे साथहै कनकैया किधरकोही उड़ै परन्तु उडानेवालेकेही हाथमें रहतीहै । दृष्टान्तालंकार ॥ ३१७ ॥

विरहविथा जल परसबिन, बसियत मो जियताल ।
कछु जानत जलथमनविधि, दुर्योधनलों लाल ॥

विरहकी विथाके जलको स्पर्श किये विना मेरे जीरूपी सरोवरमें आप निवास करते हो हेलाल ! क्या आप दुर्योधन के समान कुछ जलथंभनविधि जानतेहो जिससे मेरे मन-रूपी सरोवरकी विरहविथा तुमको नहीं व्यापती । पूर्णोपमा ॥ ३१८ ॥

सोरठा ।

पावसकठिन जु पीर, अबला क्योंकर सहिसकै ।
तौऊ धरत न धीर, रक्तबीजसम अवतरै ॥ ३१९ ॥

वर्षाऋतुकी कठिन पीड़ाको अबला किसप्रकार सहन करसकती है इसमें तो उनकाभी धीर नहीं रहता जिनका रक्त और वीज समान (नपुंसक) है स्त्रीका रज थोड़ा पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे पुरुषवीर्य न्यूनहोनेसे कन्या समान होनेसे नपुंसक होताहै । दृष्टान्त ॥ ३९९ ॥

बिजुरी जनु मेह, आन यहाँ विरहा धरो ।
आठों यामअछेह,दृग जु बरत बरसत रहत ४००

बिजलीके साथमें मेघ आकर मानों विरहने यहां रख दियाहै जो निरन्तर आठों पहर नेत्र बलते और बरसते रहते हैं । वस्तूत्प्रेक्षालंकार ॥४०० ॥

इति श्रीकविवर बिहारीलालकी सतसईमें भाषाटीकासहित

चतुर्थ शतक पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

सोरठा ।

कौंड़ा आँसूबूंद, कसि साँकर बरुनी सजल ।
कीने बदनहि मूंद,दृग मलंग डारे रहत॥४०१ ॥

आँसुओंकी बूंद बड़ी कौड़ी किये सजलादिन बरुनियों की शृंखलामें कसकर मुख बंदकर नेत्ररूपी इष्टयांगी डारे पर रहते अर्थात् टटकतेहैं बड़ी आँसुकी कौड़ीकी आँख और बूंद

नेत्रको कौड़ीसे नेत्र कहतेहैं । साँकर—जंजीर । मलंग-फकीर योगी ॥ ४०१ ॥

दोहा ।

कागजपरलिखत न बनत, कहत सँदेश लजात ।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हियकी बात ॥४०२॥

प्रोषितपतिकाका संदेशा सखीसे,हेसखी! कागजपर लिखते नहीं बनता और संदेशा कहतेमें लाज आतीहै तेरा हृदयही सब मेरे मनकी बात कहदेगा अपने मनके दुःखसे मेरा दुःख जानना! परिसंख्यालंकार ॥ ४०२ ॥

तर झुरसी ऊपर गरी, काजलजल छिरकाय ।
पिय पाती बिनहीं लिखी,बाँची बिरहनलाय४०३

जिससमय विरहाग्निसे भरी प्रोषितपतिका स्वामीको पत्री लिखने बैठी तो उसके हाथकी अग्निसे तरेसे झुरसी और रुदन करनेसे आंखोंके काजलसहित आंसू गिरनेसे ऊपरसे गरी निदान प्यारीकी विनाही लिखी पत्रीमें पतिने उसका विरहदुःख बांचलिया । अनुमान अलंकार ॥ ४०३ ॥

विरहविकल बिनही लिखी, पाती दई पठाय ।
अंकबिहूनी यों सुचित, सूने बांचतुजाय॥४०४॥

विरहकी व्याकुलताके कारण प्यारीने विनालिखीही पत्री भेजदी वह अक्षरसे रहितहै तथापि चित्त देकर प्रीतम

सूनेही वांचते जाँयहैं आशय यह कि, पत्री पातही प्यारीकी सब विपत् मनमें समागई । भ्रान्ति ॥ ४०४ ॥

करले चूम चढाय शिर, उर लगाय भुजभेंट ।
लहिपातीपियकीलखति,बाँचातिधरतिसमेट४०५

प्यारेकी पत्री हाथमें ले मुखसे चूम शिर चढाय हृदयसे लगाय भुजासे मिलाती देखती वांचकर समेट धरतीहै । प्रेमालंकार ॥ ४०५ ॥

रँगराती राते हिये, प्रीतम लिखी बनाय ।
पाती काती विरहकी, छाती रही लगाय॥४०६॥

प्रीतमने लालरंगके कागजपर अनुरागभरे मनसे पाती बनाकर लिखी उस विरहकी काटनेवालीको प्यारी हृदयसे लगाय रही अथवा काती-विरहके तारसे फैलीहुई । वृत्त्यनुप्रास ॥ ४०६ ॥

नाच अचानकही उठो, बिन पावस बनमोर ।
जानतिहों नन्दित करी यह दिशि नन्दकिशोर ॥

अचानकही बिना वर्षाऋतुके वनमें मोर नाचउठे निश्चय होताहै कि, इस दिशाको घनश्यामने अपने आगमनसे प्रसन्न किया आशय यह कि, नायककी इच्छासे मानकर गुप्ता

उपायकरतीथीं कि, इसमें किसीने बिन पावस मोर नाचते देख अनुमानसे कृष्णका आगम जताया । अनुमान ॥ ४०७ ॥

कोटि यतन कोऊ करो, तनुकी तपति न जाय ।
जौंलगि भीजै चीरलौं, रहै न यों लपटाय ॥ ४०८ ॥

प्यारी कोटि यतन करो परन्तु प्यारेके तनुकी तपन नहीं जायगी जबतक भीजे चीरके समान तुम्हारे शरीरमें लिपटकर न रहै । पूर्णोपमा--नायक उपमा चीर उपमेय लौं वाचक लिपटना धर्म ॥ ४०८ ॥

सोवत सपने श्यामघन, हिलमिल हरत वियोग ।
तबही टरि कितहूंगई, नींदौ नींद न जोग ॥ ४०९ ॥

सखी सोतेसमय स्वप्नमें श्यामघन हिलमिलकर वियोग हरते थे उसी समय टलकर कहीं नींद चलीगई इससे यह निंदाके योग्यहै, 'नींद तोहि बेचूं गाहक होय' । विपरीतालंकार--[दोहा--सिधिको बाधक होय जहँ, साधनसों विपरीत। नींद योग साधक यहां, बाधक भई अनीत] ॥ ४०९ ॥

जब जब वे सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जांहिं ।
आँखिन आँख लगीरहै, आंखै लागत नाहिं ४१० ।

सखी जब जब उन बातोंकी याद करीजायहै, तब तब दुःखके

कारण सब सुखदुख जातेरहे हैं उनकी आंखोंमें मेरी आंख लगी रहतीहैं, रातको आंख नहीं लगती ॥ ४१० ॥

सघनकुञ्जछाया सुखद, शीतल मन्द समीर ।
मन ह्वैजात अजौं वही, वा यमुनाके तीर॥४११॥

हे सखी ! सघन कुञ्जकी छाया सुखदायक शीतल मन्द पवनवाले उस यमुनाके किनारे जानेसे कृष्णकी यह सब वार्ता स्मरण करनेसे अबभी मन वैसाही होजाताहै ॥ ४११ ॥

जहाँ जहाँ ठाढ्यो लख्यो, श्याम सुभग शिरमोर।
उनहूँबिनक्षणगहिरहत, दृगनिअजौंवहठौर ४१२

भाग्यवानोंके मुकुटमणि कृष्णको पहले जहां जहां खडे हुए देखा था अब उनके विनाभी नेत्र उस स्थानको देखकर क्षणमात्रको वहां स्थित होजातेहैं वा वह स्थान अब भी क्षणमात्रके लिये नेत्रोंको पकडरखताहै । स्मृति ॥ ४१२ ॥

सोवत जागत सपनवश, रस रिस चैन कुचैन ।
सुरति श्यामघनकी सुरति, बिसरेहू बिसरै न४१३

सोते जागते स्वप्नमें रसमें रिसमें चैनमें कुचैनमें श्यामघनकी सुरत हृदयमें रहतीहै बिसरानेसेभी नहीं बिसरती । विशेषोक्ति ॥ ४१३ ॥

भ्रुकुटी मटकन पीतपट, चटक लटकती चाल ।
चलचखचितवनि चोरि चित,लियो विहारीलाल॥

हे सखि ! भौंहोंके मटकाने, पीतवस्त्रकी चटक, लटकती चाल तथा चंचल आंखोंकी चितवनसे कृष्णने मेरा मन चुरालिया । जाति अलंकार ॥ ४१४ ॥

और भाँति भये बये, चौसर चंदन चंद ।
पतिबिन अतिपारति विपति,मारत मारुत मंद ॥

हे सखी! अब चार लडका मोतियोंके फूलोंका हार चंदन और चन्द्रमा अब औरही भांतिके होगये यह पतिके विना महाविपत्ति डालते हैं और मंद पवन तो मारे डालती है । भेदाकातिशयोक्ति ॥ ४१५ ॥

हौंही बौरी विरहवश, कै बौरो सब गाम ।
कहाजानिये कहतहैं, शशिहि शीतकरनाम४१६

हे सखी ! क्या विरहके वशसे मैं बौरीगईहूं,कै सब गांव बावरोहै क्या जानकर चन्द्रमाका नाम शीतल किरण कहतेहैं. यह तो शीतकर नहीं है । संदेहालंकार ॥ ४१६ ॥

ह्यांते ह्वां ह्वांते यहां, नैको धरत न धीर ।
निशिदिन ठाढीसीरहै, बाढी गाढी पीर ॥४१७॥

हे सखी ! वह ह्यांसे ह्वां और ह्वांसे यहां आतीहै, तनकभी

धीर धारण नहीं करती रातदिन जलीसी रहती है उसको गाढी पीर बढीहै । वृत्त्यनुप्रास ॥ ४१७ ॥

इत आवत चलिजात उत, चली छ सातिक हाथ।
चढी हिंडोरेसीरहै,लगी उसासनि साथ ॥४१८॥

इधर आवैहै, उधर चलीजायहै, फिर छः सातक हाथ चलती है उसासोंके साथ लगी हिंडोरे पर चढीसी रहती है आशय यह कि, सांस छोडनेसे बढै है और लेनेसे हटैहै। उपमेयलुप्ता ॥ ४१८ ॥

फिरि फिरि बूझति कहि कहा,कहो साँवरे गात ।
कहा करत देखे कहां,अली चली क्यों बात४१९

प्रेमके मारे सखीसे वारंवार बूझती है कैह तो साँवरे शरीरने क्या कहाहै, कृष्ण तुमने क्या करते हुए कहां देखे,और उनके समीप मेरी चर्चा कैसे चली। प्रमालंकार ॥ ४१९ ॥

जोन्ह नहीं यह तम यहै, किये जु जगत निकेत।
होतउदयशशिके भयो,मानहु शशिहरिसेत४२०

हे सखी ! यह चांदनी नहीं वही अंधकार है जिसने जगत में अपने घर कियेहैं चन्द्रमाके उदय होनेही मानों सफेद होगया है। अन्यथा– चांदनी सुखदाई होती है यह दुःखदाई प्रोषितपतिकाहै ॥४२०॥

तजि शंका सकुचत न चित,बोलत बाक कुबाक।
दिनक्षणदा छाकीरहति,छुटति नक्षणछबिछाक॥

प्रोषितपतिका के प्रलाप उन्माद वर्णन,सखी उसने शंका त्याग दी है चित्तमें सकुचाती नहीं वाक्य कुवाक्य बोलती है दिन रात मत्त रहती है क्षणको प्रीतमके रूपका मद नहीं छुटता [दोहा—दोमें हो इक अधिकई, व्यतिरेकालंकार। मदछक पुनि छबि छकरही, छुटत न प्राण अधार]। व्यति-रेकालंकार ॥ ४२१ ॥

करके मीडे कुसुमलों, गई विरह कुम्हिलाय ।
सदासमीपिनसखिनहूं, नीठ पिछानी जाय४२२

प्रोषितपतिकाको सखीका वचन, तुम्हारी प्यारी हाथके मसले फूलके समान कुम्हिला गई है सदा समीपमें रहने-वाली सखियोंसेभी तो नहीं पहँचानी जाती।लुप्तालंकार४२२

नेक न जानी परत यों, परो विरह तनु छाम ।
उठति दियालों नादिहरि, लियो तिहारेनाम४२३

वह इस समय नेक भी नहीं जानी पडती इस प्रकार विरहसे उसका शरीर क्षीण पडगयाहै परन्तु हेकृष्ण! तुम्हा-रा नाम लेनेसे अब भी दीवेके समान डहडहा उठती है। उप-मेयलुप्ता है ॥ ४२३ ॥

करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छांडत नीच।
दीन्हेंहू चश्माचखन, चाहै लखै न मीच॥४२४॥

यद्यपि वियोगने ऐसा 'दुर्बल' कररक्खाहै तथापि नीच मार्ग नहीं छोडती मृत्यु आँखोंमें चश्मा लगाकर भी ढूंढती है परन्तु उसे नहीं पाती इससे बची है ऐसी दुबली होगई है। अत्युक्ति ॥ ४२४ ॥

नित संशो हंसो बचत, मनो सुइह अनुमान।
विरह अगिन लपटनिसकै,झपटनमीच सिचान॥

हे सखी! यह सदा 'संशो' संदेहही रहता है कि, उसका (हंसो) जीव कैसे बचेगा, परन्तु यह अनुमान है कि, विरहकी अग्निकी लपटोंसे बाजरूपी मृत्यु इसको झपट नहीं सकती हेतूत्प्रेक्षा ॥ ४२५ ॥

पलन प्रगट बरुनीन बढ़ि, छन कपोल ठहरात।
अँसुआपरछतियांछिनक, छनछनायछिपजात॥

हे सखी ! पलकोंमें प्रगटहो बरौनियों में बढकर क्षणमात्रको कपोलपर ठहरते हैं, फिर उसके आंसू छातीपर पडते ही छिनमात्रमें छनछना कर छिप जाते हैं। अत्युक्ति॥४२६॥

प्रगटौ आग वियोगकी, बह्यौ विलोचन नीर।
आठौ याम हियौ रह्यौ उसांससमीर॥४२७॥

वियोगकी आगसे प्रगट हुआ जल उसके नेत्रों से बहता है आठों पहर उसका मन श्वासकी पवनसे उड़ा रहता है। पर्यायोक्ति ॥ ४२७ ॥

तजो आँच अति विरहकी, रह्यो प्रेमरस भीज ।
नयननिके मग जल बहै, हियो पसीज पसीज४२८

हे सखी ! अब इसका शरीर विरहकी आंचसे तचा है और प्रेमके रसमें भीजकर हृदयसे पसीज २ कर नेत्रोंके मार्गसे जल बहता है। समासोक्ति ॥ ४२८ ॥

चकी जकीसी ह्वै रही, बूझे बोलति नीठि ।
कहूं दीठलोनी लगी, कै काहूकी डीठि ॥४२९॥

जडता वर्णन, वह भौंचक जकडीसी होरही है, बूझेसे भी नहीं बोलती, नीठकर कहीं इसकी दृष्टि लगी है, अथवा किसीकी दृष्टि इसे लगी है। सन्देहालंकार ॥ ४२९ ॥

मरी डरी कि टरी व्यथा, कहा खरी चलि चाहि।
रहीकराहि कराहि अति, अबमुख आहि नआहि॥

मरी पड़ी है अथवा उसकी व्यथा दूर हुई, तू क्या खड़ी है चलकर देख तौ कराह कराह रही थी अब बहुत इसके मुखमें हाय नहीं है मरणदशा। वृत्त्यनुप्रासकी भांति वीप्सा और जमक ॥ ४३० ॥

गनती गनवेते रही, छतहू अछत समान ।
अब अलिये तिथि औमलो, परे रहैं तनुप्रान ४३१

जिस प्रकारसे अवम् तिथि गिन्तीके गिननेमें नहीं आती है और वह (छत) होकरभी अनहोनेके समान है, हे आली ! अब यह औम् हानि तिथिके समान शरीरमें प्राण पडे रहेंगे काममें नहीं आवेंगे । पूर्णोपमा ॥ ४३१ ॥

विरहविपति दिन परतही, तजे सुखनि सब अंग ।
रहि अवलम्ब दुखौ भये, चला चली जियसंग ॥

हे सखी ! विरहकी विपत्तिके दिन पडतही सुखोंने सब अंगोंको त्याग दिया, अबलों दुःखोंका अवलम्ब था परन्तु अब जीके साथ वेभी जाते हैं । लुप्तोत्प्रेक्षा ॥ ४३२ ॥

मरन भलो वरु विरहते, यह विचार चित जोय ।
मरत मिटै दुख एकको:विरह दुहुँन दुख होय ४३३

हे सखि ! वियोगसे मरना भला है, यह विचार तू अपने मनमें कर देख, कारण कि, मरनेमें एकका दुःख छूट जाता है, और विरहमें दोनोंको दुःख होता है । लेशालंकार (दोष-दोषनमें गुण कल्पना, गुणमें दोष बनाय ॥ सो लेशालंकार है कविजन लखन सुभाय) ॥ ४३३ ॥

मरवेको साहस कियो, बढे विरहकी पीर ।
दौराति है समुहे शशिहि, सरासिज सुरभिसमीर ॥

विरहकी पीर बढजानेसे वियोगिनीने मरनेका साहस किया है, चन्द्रमा कमल सुगन्धित पवन इनके सन्मुख दौरती है तात्पर्य यह कि, वियोगीको उपरोक्त वस्तु ताप देती है सो वह इनके समीप धावमान होती है कि, अधिक अग्निसे शरीर भस्म होजाय, यहाँ चन्द्रमादि उद्दीपन विभावन हैं, विचित्रालंकार [दोहा—जहँ निज इच्छा किये ते फल विपरीत लखाय । तेहि विचित्र भूषण कहत, कविजन हिय हुलसाय] ॥ ४३४ ॥

सुनतपथिकमुहँमाहानिशि,लुएँचलत उहिगाम ।
बिन बूझे बिनहू कहे,जियत विचारी वाम॥४३५॥

पथिकके मुखसे यह बात सुनकर कि, माहकी रातमें उस गाममें लुएँ चलती हैं, बिना बूझे बिनाही कहे प्रोषितपतिका बालाके नायकने विचारलिया कि, प्यारी अबतक जीतीहै चलैं । अनुमान ॥ ४३५ ॥

मानों मनुहारी भरी, मार्यो खरी मिठाहिं ।
वाको अति अनखाहटो, मुसकाहट बिन नाहिं ॥

धृष्टनायककथन, सखी मारभी उसकी प्यारसे भरी है

और गारीभी अति मीठी लगती हैं, उसका अधिक अनखाना भी मुसकुराहटके विना नहीं है। विरोधक्रिया विन विरोधालंकारवर्णन ॥ ४२६ ॥

लहि रतिसुख लगिये गरे, लखी लजीली डीठि
खुलत न मो मनगडिरही, वहैअधखुलीनीठि४३७

नायकवचन, हेसखि ! जिस समय वह रतिका सुख लेकर गलेसे लगी, और लाजभरी दृष्टिसे देखा, सो वह उसकी अधखुली दृष्टि छुटती नहीं, मेरे मनमें गडरहीहै। विरोधाभास ! [दो०-जो विरोधवत भासियत, अरु विरुद्ध नाहिं होय। कहत विरोधाभास तेहि, कविजन जानत कोय] ॥ ४३७॥

बडी कुटुमकी भीरमें, रही पैठ दै पीठि।
तऊ पलक पारिजात इत, हेरि हँसौंही डीठि ४३८

कुटुम्बके लोगोंकी बड़ी भीरमें यद्यपि वह पीठ देकर बैठ गई है तथापि स्वभावसे हँसीली दृष्टिसे इधर पलक पडजातीहै और देखलेतीहै। तृतीय विभावना ॥ ४३८ ॥

सरसत पोंछति लखिरहत, लगि कपोलके ध्यान।
करलैप्यो पाटल विमल, प्यारी पठये पान४३९

कहीं प्यारीके भेज पान प्योंके पास आये उन्हें देखकर कपोलोंका ध्यान आगया, इसपर सरसा करनेलगी छूतेहैं

पोंछते हैं देखते रहजातेहैं प्यारीके गालोंके ध्यानमें लगेहुए गुलावसे निर्मल हाथमें प्यारीके भेजे पान लेकर सरसते हैं पाटल-कुछ सफेदी और लाली लिये गुलाब। सरसतका अर्थ चिकनानेका है ॥ ४३९ ॥

नखशिखवर्णन ।

सहज सुचिक्कन श्याम रुचि,शुचिसुगंधसुकुमार।
गनत न मनपथअपथलखि,बिथुरेसुथरेबार ४४०

स्वभावसे चिकने, कारे कान्तिमान्, पवित्र,सुगंधित और कोमल विखरे सुन्दर बार उसके देखकर मेरा मन पथ अपथ भला बुरा नहीं विचारता। जाति अलंकार [दोहा—निजजातिनके कर्म गुण, जामें मिलहिं प्रवीन ॥ ताहि जातिभूषण कहत, यह मत अतिप्राचीन] ॥ ४४० ॥

छुटे छुटावैं जगतसे, सटकारे सुकुमार ।
मन बाँधत वेणी बँधे, नीलछबीरे बार ॥ ४४१ ॥

प्यारीके बाल छुटे (खुले) हुए जगत्से छुटादेतेहैं, इस प्रकार सटकारे(लम्बे पतले) और कोमल हैं और वेणी बांधनेसे मनको बांधते हैं इस प्रकार नीले छविभरे बारहैं। चतुर्थ विभावना ॥ ४४१ ॥

कुटिलअलकछुटिपरतमुख,बढिगोइतो उदोत ।
वँक बँकारी देत ज्यों, दाम रुपैया होत ॥४४२॥

टेढी अलकें छूटकर पडतेही मुखकी इतनी ज्योति बढ गई जैसे टेढी लकीर देनेसे दामका रुपैया होजाताहै । पूर्णोपमा ॥ ४४२ ॥

कच समेट कर भुज उलटि,खरा शीशपट टारि ।
काको मन बाँधे न यह,जूरी बाँधनिहारि ॥४४३॥

बाल समेट कर भुजा उलटकर (पीछे करके) तथा शिर का कपडा हटाकर यह जूडबाँधनेवारी किसका मन नहीं बाँधती । जातिअलंकार ॥ ४४३ ॥

नीको लसत ललाटपर, टीको जरित जराय ।
छविहि बढावत रवि मनों, शशिमंडलमें आय ॥

टीका वर्णन, जडाऊ जडित टीका माथे पर बहुत अच्छा लगता है मानों सूर्य चंद्रमण्डलमें आकर छविको बढाग्हाहै। उक्तास्पद उत्प्रेक्षा ॥ ४४४ ॥

कहत सबै बेंदी दिये, आँक दशगुणो होत ।
तियलिलार बेंदी दिये,अगणित बढत उदोत ४४५

यह सब कहतेहैं कि बिन्दी देनेसे अंक दशगुणा होजाताहै परन्तु स्त्रीके माथेपर बेंदी लगानेसे अगणित कांति बढती है । व्यतिरेकालंकार ॥ ४४५ ॥

भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे विराजि ।
इंदुकला कुजमें बसी, मनों राहुभयभाजि ४४६ ॥

हे ललन कृष्ण ! वह माथेपर लाल रोलीकी बेंदी लगायेहै, उसपर चावर लगे हुये ऐसे शोभा देतेहैं कि, मानों चंद्रमाकी कला मंगलमें आबसी है राहुके डरसे भागकर । उक्तास्पदव-स्तूत्प्रेक्षा ॥ ४४६ ॥

सबै सुहायेही लगैं, बसे सुहाये ठाम ।
गोरे मुँह बेंदी लसै, अरुण पीत सित श्याम ४४७ ॥

शोभित ठौरमें बसनेसे सब अच्छे लगते हैं, जैसे गोरे मुखपर बेंदी शोभा देती है, तथा लाल पीली श्वेत श्याम यह सब शोभित होते हैं लाल रोली, पीली केशर, श्वेत चंदन-काली कस्तूरी वा काजरकी बिन्दी । दृष्टान्तालंकार ॥ ४४७ ॥

तियमुख लगि हीराजरी, बेंदी बढ़ै विनोद ।
सुतसनेह मानों लिये, विधुपूरण बुध मोद ॥ ४४८ ॥

प्यारीके मुखपर हीराजरी बेंदी देखकर ऐसी प्रसन्नता बढती है, मानों पुत्रके सनेहसे पूर्ण चन्द्रमा बुधको गोदीमें लिये है किसी पुराणमें भी बुधको श्वेत लिखाहै, तथा कविप्रियामें नाकके बुलाकके मोतीकी उपमा बुधसे दी है । उत्प्रेक्षा ॥ ४४८ ॥

भाल लाल बेंदी दिये, छुटे बार छबि देत ।
गहो राहु अति आहिकर, मनु शशि सूरसमेत ॥

माथेपर लाल बेंदी दियेहै, और छुटे बार ऐसी शोभा देते हैं मानों चन्द्रमाको सूरज समेत राहुने साहसकर पकड़ाहै यदि कहो निन्दित और पवित्रका संगम कहा तो यों अर्थ करना कि, माथेपर लाल बेंदी चन्द्रमा सूर्यके समान शोभा देतीहै वहां राहुभी धीर धारण करगया । उत्प्रेक्षा ॥४८९॥

मिलि चन्दन बेंदी रही, गोरे मुख न लखाय ।
ज्यों ज्यों मद लाली चढै, त्यों त्यों उघरति जाय॥

चन्दनसे मिलकर गोरे मुखपर लगाई हुई बेंदी दिखनेमें नहीं आती ज्यों ज्यों मुखपर मदकी लाली चढतीहै त्यों त्यों उघडती जातीहै । उन्मीलितालंकार ॥ ४९० ॥

सोरठा ।

मंगल बिंदु सुरंग, मुख शशि केशर आड गुरु, ।
एक नारि लहि संग, रसमय किय लोचन जगत॥

लाल बेंदी मंगल, मुख चन्द्रमा, केशरकी आड बृहस्पति इन तीनोंने एक स्त्रीरूपराशिको प्राप्त होकर सब जगत्के नेत्र रसमय करदिये इन तीनों ग्रहोंके एकराशिपर आनेसे जलयोग होताहै । समविषय भाग्यालंकार ॥ ४९१ ॥

दोहा ।

पँचरँग रँग बेंदी बनी, उठी उमगि मुखज्योति ।
पहरे चीर चुनोटिया, चटक चौगुनी होति ४५२॥

पंचरंग बेंदी प्यारीके लगा है,इससे मुखकी ज्योति जगमगा उठी है,तथा सुरमई (रक्त और श्याम) वस्त्र पहरे है, इससे चौगुनी चटक होरही है। अनुगुणालंकार। एक मुखकी कांति दूजे पियाका रंग पाय खरीहुई तीजे बेंदी और चीरसे चौगुनी चटकहै चिनौटिया सुनहरे रुपहरेके तारोंका वस्त्रभी होता है ॥ ४५२ ॥

खोरि पनच भृकुटी धनुष,वधिक समर ताजि कान।
हनत तरुन मृग तिलकशर,सुरख भाल भरि तान।

व्याधे रूप कामदेवने सब मर्य्यादा छोड़कर खौररूप प्रत्यंचा भृकुटीरूप धनुषसे तिलकरूप बाणमें लालभाल भरके चढाय युवारूप मृगको मारा ॥ ४५३ ॥

नासा मोरि नचाय दृग, करी ककाकी सौंह ।
काँटेसी कसकत हिये,गड़ी कटीली भौंह॥४५४॥

जो कि, उसने नाक सिकोड नयन नचायकर अपने ककाकी सौगन्ध खाई उस समयकी उसकी कटीली भौंहें मेरे हृदयमें गड़ी हुई कांटेसी कसकती हैं । स्वभावोक्ति और पूर्णोपमा ॥ ४५४ ॥

रससिंगार मज्जन किये, कंजन भंजन दैन ।
अंजनरंजनहू विना, खंजन गंजन नैन ॥४८५॥

शृंगार रसमें स्नान किये हुए कमलको भी लज्जित करनेवाले सुरमा लगाये विना भी यह नेत्र भोलेको लज्जित करते हैं । वृत्त्यनुप्रास ॥ ४८५ ॥

अरत टरत न वरपरे, दई मरक मनु मैन ।
होड़ाहोड़ी बढ़ चले, चित चतुराई नैन ॥४८६॥

हठ करके टलते नहीं हैं और बड़पड़े हैं मानों कामदेवने इनको सनकार दिया है चित्त चतुराई और नेत्र होड़ाहोड़ी बढकर चले हैं । हेतु उत्प्रेक्षालंकार ॥ ४८६ ॥

योगयुक्ति सिखई सवै, मनो महामुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन ॥४८७॥

मानों महामुनि कामदेवने इसको सब युक्ति योगकी सिखाई है पियासे एकता होनेकी इच्छाकर नेत्र कान अथवा वनको सेवते हैं, योगका अर्थ परमात्मामें मग्न होना और पतिसे संयोग होना काननका अर्थ वन और कान है यानी वन और नेत्र कानका सेवन करते हैं। एकदेशविवर्ति रूपक ॥ ४८७ ॥

खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार ।
काननचारी नैन मृग, नागरनरन शिकार ४५८॥

हे सखी चतुरशि कारी कामदेवने कानन(वन और कान) तकजानेवाले नेत्ररूपी मृग चतुर मनुष्योंके शिकार करनेवाले अच्छे खिलाडी सिखाये हैं। अद्भुतरस रूपकालंकार, मृग मनुष्योंका शिकार करते हैं यह अद्भुत है ॥ ४५८ ॥

सायकसम घायक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात ।
झखौ बिलखि दुरिजात जल, लखिजलजातलजात

बाणोंके समान घायल करनेवाले नेत्र श्वेत श्याम रक्त तीन प्रकारके रंगसे रँगे हैं जिनको देखकर मछरी जलमें छिप जाती और दीर्घता देखकर कमल लजाते हैंहेतु उत्प्रेक्षा ॥४५९॥

बर जीते शर मैनके, ऐसे देखे मैन ।
हरनीके नैनानते, हर नीके यह नैन ॥ ४६० ॥

हेहरिकृष्ण! इन्होंने बलसे कामके बाण जीतालिये ऐसा मैंने देखा यह नेत्र तो हरनीके नेत्रोंसे भी नीके अच्छे हैं चंचलता। काव्यलिंग और जमक ॥ ४६० ॥

झूँठे जान न संग्रहे, मन मुख निकसे बैन ।
याहीते मानहु किये, बातनको विधि नैन४६१॥

दोनोंका मन मुँहसे निकले वचनोंको झूँठे जान कर संग्रह नहीं करता, इसीसे मानों ब्रह्माने बातें करनेको नेत्र बनाये हैं। सिद्धास्पदहेतूत्प्रेक्षा ॥ ४६१ ॥

दृगनि लगत वेधत हियो, विकल करत अँग आन।
यह तेरे सबसे विषम, ईछन तीछन बान ४६२॥

आँखोंमें लगते हैं और हृदयको वेधते हैं औरही सब अंगोंको विकल करदेते हैं तेरे यह नेत्ररूपी पैने तीर सबसे कठिन (विषम) हैं। असंगति ॥ ४६२ ॥

फिरि फिरि दौरत देखियत, निचले नेक रहैं न।
ए कजरारे कौन पर, करत कजाकी नैन॥४६३॥

यह बार बार दौड़ते देखे जाते हैं क्षणमात्रको भी निचले नहीं रहते यह काजर बिना दियेही काजर दियेसे किस पर दौड़ करते हैं। वाचकोपमान लुप्तोपमालंकार ॥ ४६३ ॥

सारी डारी नीलकी, ओट अचूक चुकैं न।
मो मन मृगकर वर गहै, अहै अहेरी नैन॥४६४॥

यद्यपि नील रंगकी सारी ओटमें डाली है, तथापि ये अचूक चूकते नहीं, मेरे मन रूपी मृगको हाथों हाथ पकड़ लिया है यह तेरे नेत्र बड़े शिकारी हैं। सांगरूपक ॥ ४६४ ॥

नीचेही नीचे निपट, डीठि कुहीलों दौरि ।
उठि ऊँचे नीचे दियो, मन कुलंग झकझोरि ४६५

अति नीचेही नीचे उसकी दृष्टिने कुही (छोटी बलिष्ठ चिड़िया) के समान दौड़ कर देखा और उठ कर मेरे मन-रूपी कुलंगको ऊंचे नीचे दबोच डाला । दुर्गोपमा । कुही चिड़िया कुलंगको भगा देती है ॥ ४६५ ॥

फूले फरकत रैफरी, पल कटाक्ष करवार ।
करत बचावत विय नयन, पावक घाय हजार ४६६

दोनो स्त्री पुरुषोंको परस्पर चोट करते देख सखी बोली, हे सखि ! पलककी ढाल और दृष्टिकी तलवार लेकर प्रसन्न हो कूदते हैं, और दोनोंकेही नेत्ररूपी पावक हजारों घाव बचाते हैं । श्लेषगर्वित सविषय सावयवरूपक ॥ ४६६ ॥

तिय कत कमनैती सिखी, बिन जिह भौंहकमान ।
चलचित वेधत चुकत नहिं, बंक विलोकनि बान ॥

हे प्रिये ! तुमने यह बाणविद्या कहाँ सीखी है कि, विनाही रोदा चढाये भौंहरूपी कमानसे बाण छोड चित्तरूपी निशा-नेको मारती हो तेरे बांके देखनेके बाण चूकतेही नहीं । द्वितीय विभावना ॥ ४६७ ॥

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन ।

मानहुँ सुरसरिता विमल, जल उछरत युग मीन॥

झीने घूँघटके वस्त्रमें चञ्चल नेत्र चपचमाते हैं मानों गंगाजीके उज्वल जलमें दो मछली उछलती हैं। वस्तु उत्प्रेक्षा। वस्त्र श्वेत ॥ ४६८ ॥

वारों बलि तो दृगनिपर, अलि खंजन मृगमीन।
आधी दीठि चितौन जेहि, किये लाल आधीन ॥

तेरे इन नेत्रोंपर मैं भौंरे ममोले मृग और मीनकोभी वारडारहूं जो तैंने आधी दृष्टिसे देखतही कृष्णको अपने आधीन करलिया। व्यतिरेकालंकार ॥ ४६९ ॥

जे तव हुती दिखादिखी, भई अमी इक अंक।
दगैं तिरीछी दीठि अब, ह्वै बीछीको डंक ॥४७०॥

जो तब देखा देखी थी वह निश्चयही अमृतरूप हुई थी अब तो वह तिरछी दृष्टि बिच्छूका डंक होकर लगती (डसती) है। पर्याय अलंकार ॥ ४७० ॥

बेधक अनियारे नयन, बेधत करन निषेध।
बरबश बेधन मो हियो, तो नासाको बेध ॥४७१॥

यह मैं [illegible] नेत्र [illegible] डारने हैं इनके [illegible] निश्चय न करे तबहि नासाका बेधही [illegible] है। चतुर्थ विभावना ॥ ४७१ ॥

जटित नीलमणि जगमगत, सींक सुहाई नाक ।
मनो अली चम्पककली, बसि रस लेत निशंक ।

नीलमणिकी जड़ी हुई झलकी नाकपर शोभा देती है मानों भौंरा चम्पेकी कलीमें निवास कर रस लेता है। वस्तु उत्प्रेक्षालंकार ॥ ४७२ ॥

यदपि लौंग ललितो तऊ, पहिर न तू इक आँक।
सदा शंक बढ़िये रहै, यहै चढ़ेसी नाक ॥ ४७३ ॥

यद्यपि लौंग सुन्दर है, तो भी तू मत पहरे, इसमें निश्चय मान यह तेरी चढीसी नाक देखकर सदा शंका बढतीही रहती है अर्थात् नाक चढनेसे मानका भ्रम होता है। व्याजस्तुति ॥ ४७३ ॥

इन दोई मोती सुगथ, तू नथ गरब निशांक।
जिह पहरत जग दृग ग्रसत, लसत हंसत सीनाँक॥

इन दोई मोतीके अच्छेप्रकारसे गुथनेसे हे नथ! तू निःशंक गर्वकर, जिसके पहरनेसे जगत्के नेत्र ग्रसकर नासिका हँसतीसी विदित होतीहै ! काव्यलिंग ॥४७४॥

वेसरमोती धनि तुही, को पूछै कुल जाति।
पीबोकर तियओठको, रसनिधरक दिनराति४७५

हे बेसरके मोती ! तू ही धन्यहै ऐसे विषयमें कोई कुल जाति नहीं पूछता तू । प्यारीके ओठका रस रातदिन पीता रह। अन्योक्ति ॥ ४७५ ॥

वरन वास सुकुमारता, सबविधि रही समाय ।
पँखुरी लगे गुलाबकी, गात न जानी जाय ४७६॥

वरन (रंग) सुगंधि सुकुमारता सब प्रकार उसमें समारहीहै जो गुलावकी पखुरी भी शरीरसे लगी हुई नहीं जानी जाती गुलाब और शरीरका रंग एकसाहै ॥ ४७६ ॥

लौने मुख दीठि न लगै, यों कहि दीनों ईठि ।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये डिठौना दीठि ४७७॥

इस सलौने मुखपर किसीकी नजर न लगे यों कह सखीने स्याहीकी बिन्दी लगादी, दीठ दिठौनाके लगातही दूनी हो लगने लगी । विषमालंकार ॥ ४७७ ॥

पिय तियसों हँसिके कह्यो, लखे दिठौना दीन ।
चन्द्रमुखी मुखचंद्र तें, भलो चन्द्रसम कीन ४७८

प्यारीको दिठौना स्याहीकी बिन्दी लगाये देख पियाने तियासे हँसकर कहा हे चन्द्रवदनि ! तुमने अपना मुखचन्द्र अच्छा चन्द्रमाके समान किया अर्थात् प्रथम निर्मल चन्द्र-

माके समान और अब श्यामतायुक्त चन्द्रमाके समान किया। व्यतिरेक ॥ ४७८ ॥

लसत सेतसारी ढक्यो, तरल तरौना कान ।
परो मनो सुरसरिसलिल,जनु रविबिंबमहान ॥

सफेद सारीसे ढकी चमकती ढेरी नायकाके कानमें ऐसे शोभा देतीहै, मानों प्रभात काल गंगाजलमें सूर्यकी परछाईं पडीहो । वस्तूत्प्रेक्षा ॥ ४७९ ॥

लसै मुरासा तियश्रवन,यों मुकतनि द्युति पाय ।
मानों परस कपोलके, रहे स्वेदकण छाय ४८०॥

प्यारीके कानोंमें मोतियोंकी कान्तिको पाकर तरकी ऐसी शोभा देती हैं जैसे कपोलोंके छूनेसे (स्वेदकण) पसीनेके कण छारहेहैं । हेतूत्प्रेक्षा ॥ ४८० ॥

शालतहै नटसालसी, क्यहू निकसति नाहिं ॥
मनमथने जानो कसी,खुबी खुबी मनमाहिं ४८१

टूटे कांटेके समान खटकतीहै किसीप्रकार नहीं निकलती कामदेवके भालेकी नोकके समान भली प्रकारसे मेरे मनमें खुबी चुभीहै । पूर्णोपमा ॥ ४८१ ॥

झीने पटमें झुलमिली, झलकत ओप अपार ।
सुरतरुकी मनु सिंधुमें, लसति सपल्लव डार४८२

महीन वस्त्रमें (झुलमुली) कानके पत्तोंकी अपार ज्योति चमकतीहै मानों सागरमें कल्पवृक्षकी डार पत्तों सहित स्थित हो। उत्प्रेक्षा ॥ ४८२ ॥

नेक हँसोंही बान तजि, लख्यो परत मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंधमें, परत चौंधसी दीठि ४८३

सखी तू नेक हँसनेका स्वभाव छोडदे तेरा मुख नजरभर कर देखाजायहै, दांतके चौककी चमकसे हमारी दृष्टि चौंधाईसी होजातीहै। काव्यलिंग ॥ ४८३ ॥

कुचगिरि चढि अति थकितह्वै, चली दीठ मुख चाड॥
फिर न टरी परियै रही, परी चिबुकके गाड ॥४८४

मेरी दृष्टि कुचरूपी पर्वत पर चढ फिर बहुत हारके मुखकी सुन्दरताकी ओर चली, परन्तु फिर थकासे आगे न चली ठोडीके गर्तमें पडी पडीही रही। काव्यलिंग ॥ ४८४ ॥

डारे ठोडी गाड गहि, नैनबटोही मार।
चिलकचौंधमें रूपठग, हाँसीफाँसी डार ॥४८५॥

मुखकी ज्योतिरूप मकरचांदनीमें सुन्दरतारूप ठगने हाँसीकी फाँसी डारकर किसने नैनरूप बटोही मारकर ठोडीके गढेमें डालदियेहैं सावयवरूपक ॥ ४८५ ॥

तौ लखि मो मन जो गही, सो गति कही न जाति।

ठोडी गाड गड्योतऊ, उडोरहत दिनरात ४८६

जो तुझे देखकर मेरे मनने जो पकडीहै सो गति कही नहीं जाती है, यद्यपि ठोडीके गर्तमें पडाहै तथापि दिनरात उड ताही रहताहै यदि कहो दिनरात उड़नेसे उड़नेकी पुष्टाई नहीं है तो इसका भाव यह कि,कहीं हाथ चिबुकको स्पर्श न करे यही सोच रहताहै ॥ ४८६ ॥

ललित श्याम लीला ललन, चढी चिबुकछबि दून।
मधु छाक्यो मधुकर पर्‍यो, मनो गुलाबप्रसून ४८७

हे कृष्ण ! सुन्दर श्याम गुदानेसे उसकी चिबुककी शोभा दूनी बढगई है,जैसे मकरन्दसे मत्त हो भौंरा गुलाबके फूलपर टूटपड़ा हो। उत्प्रेक्षा मुखवर्णन ॥ ४८७ ॥

सूर उदितहू मुदित मन, मुख सुखमाकी ओर ।
चिते रहत चहुँओरते, निहचल चखनिचकोर ॥

सूर्यके उदय होनेसभी प्रसन्न मन होकर मुखकी शोभाकी ओर चारों ओर निश्चल हुए चकोरोंके नेत्र तुझे देखतेही रहते हैं। भ्रांति मुखकी सुखमा सब ओर है ॥ ४८८ ॥

पत्राही तिथि पाइये, वा घरके चहुँपास।
नितप्रति पून्योही रहै, आनन ओप उजास ४८९॥

प्यारीके घरके चारों ओर पत्रेहीसे तिथिका पता लगता है कारण कि,उसके मुखके उजालेसे नित्य प्रति पूनोही रहती है। परिसंख्यालंकार ॥ ४८९ ॥

छिप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल चीर ।
मनो कलानिधि झलमले, कालिन्दीके नीर ४९०

नीले अंचलमें छिपा हुआ प्यारीका छबीला मुख ऐसे शोभा देता है, मानों नीले अंचलको चीरकर चन्द्रमा कालिन्दी यमुनाके नीरमें शोभा देता है।उत्प्रेक्षा॥ ४९० ॥

जरीकोर गोरे वदन, खरी बढ़ी छबि देख ।
लसत मनो बिजुरी किये, शारदशशि परिवेख ॥

जरीकी किनारी गोरे मुखपर अति बढ़ीहुई शोभा देती है मानों शरद्के चन्द्रमापर बिजली मण्डलाकार किये शोभित है। उत्प्रेक्षा ॥ ४९१ ॥

ग्रीवावर्णन ।

खरी लसत गोरे गरे, धसति पानकी पीक ।
मनो गुलूबँद लालको,लाल लाल दुतिलीक ४९२

गोरे गलेमें अति धसती हुई पानकी पीक अति शोभा देती है मानों लालोंका गुलूबंद पहरे है, हे कृष्ण । इसप्रकार लाललकीर झलकती है। हेतु उत्प्रेक्षा ॥ ४९२ ॥

पहरतही गोरे गरे, यों दौरी द्युति लाल।
मनो परसि पुलकित भई, मौलसिरीकी माल ॥

हे कृष्ण ! गोरे गलेमें पहरतेही इसप्रकारसे शोभा दौडी मानों छूनेसेही मौलसिरीकी माला रोमाञ्चित हुई हो तात्पर्य यह कि, प्यारीने प्यारेकी दी हुई वह माला गोरे गलेमें पहरी उससे यों उसकी छबि बढ़ी मानों लालके हाथसे स्पर्श हुई हो । हेतूत्प्रेक्षा ॥ ४९३ ॥

बड़े कहावत आपहू, गरुए गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जो राखिहो, हाथनि लखि मन हाथ ॥

हे गोपीनाथकृष्ण! आपभी बड़े गौरवके कहाते हो परन्तु जो उसके हाथको देखकर मन अपने हाथमें रक्खोगे तो मैं जानूंगी । संभावना ॥ ४९४ ॥

वेई कर व्यौरन वहै, व्यौरो कौन विचार ।
जिनहीं उरझो मो हियो, तिनहीं सुरझेबार ४९५॥

हे सखी ।वेही हाथ हैं और वहीं झाडना वा सुलझानाहै भेद किस विचारसे है जिनमें मेरा हृदय उलझा है उन्हींसे बाल सुलझे । पंचम विभावना ॥ ४९५ ॥

गोरी छिगुनी नख अरुन, छलास्याम छबिदेइ ।
लहति मुकति रति क्षणिक यह, नैन त्रिवेनीसेइ॥

कन अँगुरी गोरी है नख लाल हैं छल्ला काला छविदे रहा है यही क्रमसे गंगा सरस्वती और यमुना हैं, हे नेत्र! यह त्रिवेणी सेयकर क्षणमें रतिरूपी मुक्ति होजाती है। रूपका० ॥ ४९६ ॥

चलन न पावत निगममग, जग उपजो अति त्रास
कुच उतंग गिरिवर गहो, मीना मैन मवास ४९७॥

अब शास्त्रका मार्ग नहीं चलनेपाता जगतमें अति त्रास उपज रहा है कारण कि कामरूपी भीलने स्तनरूपी ऊंचे पर्वतोंकी कठिन ठौरमें अपना निवास करलिया है निगम-मग—जिस मार्गकी खबर न पड़े। मवास-कठिन ठौर "रूपका-लंकार" मेवाडके रहनेवाले जातके लोग जो लुटेरे हैं वह मीना कहाते हैं वे वन पहाडोंकी कंदरामें रहते हैं ॥ ४९७॥

गाढ़े ठाढ़े कुच न छिल, को पियहिय ठहराय ।
उकसो हीं तो हिये, दई सवन उकसाय ४९८॥

इन घने कठोर कुचोंके सामने डिलकर पियाके सामने कौन सौत ठहरेगी, तेर स्तनोंने उकसनहीं नायकके मनसे सब सौतें हटादीं चतुर्थ विभावना ॥ ४९८ ॥

दुरति न कुचबिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत ।
कवि आंकनिके अरथलों, प्रगट दिखाई देत ४९९

चोलीके भीतर तेरी छाती, इतर लगी श्वेत सारीमें नहीं छिपती कविके अक्षरोंके अर्थकी भांति प्रत्यक्ष दिखाई देती है । पूर्णोपमा और दृष्टांतालंकार ॥ ४९९ ॥

भई जु तनुछबि वसन मिलि, वरणिसके सुन नैन ।
अंग ओप आँगी दुरी, आँगी ओप दुरै न ॥५००॥

कपडेकी शोभासे मिलकर जो शरीरकी शोभा हुई उसे कोई वर्णन नहीं करसक्ता अंगकी ज्योतिसे आँगिया छिपी है परन्तु आँगियामें स्तन नहीं छिपते । मिलिता विभावना ५००

इति श्रीकविवर विहारीलालकी सतसईमें भाषाटीकासहित पंचम शतक पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

सौनजुहीसी जगमगै, अँग अँग यौबनजोति ।
सुरँगकुसुंभी कंचुकी, दुरँग देहद्युति होति ॥५०१॥

यौवनकी ज्योतिसे वह बाला पीत जुहीसी अंग अंगमें जग-मगारहीहै, कंचुकी सुरंग कसूँभी रंगकी है, सो देहकी कान्ति दो रंगयुक्त होती है लाल अंगमें देहदीप्तिका वर्णनहै । पूर्णोपमा ॥ ५०१ ॥

उर माणिककी उरवसी, निरखि घटत दृग दाग ।
छलकत बाहर भरि मनो, तियहियको अनुराग ॥

हृदयपर लाल माणिक्यकी धुकधुकी देखकर नेत्रोंका दाग घटताहै, मानों तियाके हृदयका अनुराग सम्पूर्ण भरकर बाहर छलकताहै, झलकत पाठमें झलकताहै, कहीं 'पियहिय-को अनुराग' पाठहै वहां ऐसा अर्थ करना मानों पियाके हियेका अनुराग झलकताहै। वस्तूत्प्रेक्षा ॥ ५०२ ॥

त्रिवलीवर्णन ।

कर उठाय घूँघट करत, उसरत पट गुझरौट ।
सुखपोटैं लूटी ललन,लखि ललनाकी लौट॥५०३॥

जिस समय उसने हाथ उठाकर घूँघट किया तब सलवट खाकर वस्त्र हटा उससमय नायकने प्यारीकी त्रिवलीको देख-कर सुखकी पोटैंलूटीं । जातिअलंकार, गुझरौट—उलझन । सिलोट—सिकुडन । लौट—लूटना ॥ ५०३ ॥

लहलहाति तनु तरुणई,लचि लगिलौं लफिजाय ।
लगैलांक लोयन भरी,लोयन लेत लगाय॥५०४॥

प्यारीके शरीरमें तरुणाई शोभा देरहीहै, और लचकर छडीकी भांति लचजातीहै, कमर लावण्यभरी लगतीहै परन्तु नेत्रोंको लगाय अर्थात् वशमें कर्रहीहै, लफि—लफ-कर लचककर। लग—पतली छडी । लांक लंक कमर । लो-यन-लान लावण्य।लोयन—लोचन।पूर्णोपमा जमक ॥५०४॥

लगी अनलगीसी जु विधि,करी खरी कटि छीन ।
कियेमनोवाही कसर, कुच नितम्ब अतिपीन ॥

विधाताने जो लगी अनलगीसी कटि अधिक क्षीण की है, मानों उसी कसरसे नितम्ब और स्तन अतिपुष्ट कियेहैं लगी अनलगी जुडी अनजुडी। हेतूत्प्रेक्षा ॥ ५०५ ॥

जंघावर्णन ।

जंघयुगल लोयन निरे, करे मनो विधि मैन ।
केलि तरुन दुखदेन ये, केलितरुन सुखदेन ५०६

मानों कामदेवरूपी ब्रह्माने दोनों जंघा निलौयन रोमरहित बनाये हैं, यह कदली (केले) के वृक्षोंको दुःख देनेवाले हैं और केलि (रतिक्रीडामें) तरुणपुरुषोंको सुख देनेवाले हैं । जमकालंकार । अथवा निरलोयन निरे आटेकी लोइयों-सी हैं ॥ ५०६ ॥

रह्यो ढीठ ढाढस गहै, ससि हर गयो न शूर ।
मुर्‍यो न मन मुरवानमिलि, भौचूरन चपिचूर ५०७

शूमन मुरवाओंसे मिलकर न मुडा, न सिहर गया ढीठ होकर ढाढस गहेरहा अन्तमें उसके चूडोंसे दबकर चूर होगया पादमूल और चूडोंका वर्णन। सिहर—सहमना डरना- सुरधी-लौटा । मुरवा—पादमूल पैरकी गाँठ। चूरन—चूडों से । चपि-दबकर । सम्बन्धातिशयोक्ति ॥ ५०७ ॥

एडीवर्णन ।

पांय महावर देनको, नायन बैठी आय ।
फिरि फिरि जानि महावरी, एँडी मीडतजाय५०८

जब नायन पाँवमें महावर देनेको आकर बैठी तब वारम्वार महावरी जानकर एड़ीहीको मलने लगी, महावरी-महावरकी गोली, नायनको भ्रांति इस कारण हुई कि, यह नई आई थी। भ्रांति अलंकार ॥ ५०८॥

कोंहरसी एडीनकी, लाली देखि सुभाय।
पाँय महावर देनको, आप भई बेपाय ॥ ५०९ ॥

लालफलके अर्जुन वृक्षकीसी स्वाभावि एड़ी देखकर पैरोंमें महावर देनेको आई नायन पाँवरहित होगई अपढाज (निर्बुद्धि) बेपांय कहा। पूर्णोपमा॥ ५०९॥

पायल वर्णन।

कियघायलचितचायलगि,बजिपायल तुव पाँय।
पुनिसुनिसुनिमुखमधुरधुनि-क्योंनलाल ललचाय

पायलने तेरे पांयसे बजकर, चावसे लगकर चित्त घायल किया फिर वारंवार मनोहर ध्वनि सुनकर ललन क्यों न ललचावें जहां घायल पाठहो वहां इसका अर्थ थकित करना जानना और जब पायलका शब्द ऐसा है तो आने मुखका शब्द सुन कर लाल क्यों न ललचावेंगे ॥ ५१० ॥

मोहत अँगुठा पाँयकै, अनवट जड़ित जड़ाय।
जीतौ तरवनि दुति सुढर, परो तरणि मनु पाँय ॥

जड़ाऊ जड़ावका अनवट पांवोंके अँगूठेमें शोभा देता है,

कानकी ढेरियोंने जो इसे अपनी अच्छी कांतिसे जीत लिया है, इससे मानों हार कर सूरज तियाके पाँव पडरहा है । दृष्टान्तालंकार ॥ ५११ ॥

पगअंगुरीवर्णन ।

अरुण सरोरुहसे चरण, अँगुरी अति सुकुमार ।
चुवत सुरँग रँगसी मनो, चपिबिछियनकेभार ५१२

चरण लाल कमलसे हैं उसमें अंगुरी अति कोमल हैं मानों बिछुओंके बोझसे दबके अच्छे लालरंगसी चूती हैं । हेतूत्प्रेक्षा ॥ ५१२ ॥

गतिवर्णन ।

पगपगमगअगमनपरत, चरनअरुनद्युतिझूल ।
ठौर ठौर लखियतु उठै, दुपहरियासी फूल ५१३

मार्गमें पग पगपर आगे गिरतीहै, चरण लालकी कांति झूल कर, ठौर २ उठे दुपहरियाके फूलसे दीखते हैं अर्थात् चरणोंसे चलनेके कारण दुपहरियाके फूलसे परछांईसे लाल लाल मार्गमें उठि आये हैं, व्यंग्यसे वस्तूत्प्रेक्षा ॥ ५१३ ॥

देहद्युतिवर्णन ।

तनु भूषण अंजन दृगनि, पगनि महाउररंग ।
नहिं शोभाको साजियत, कहिवेहीके अंग ५१४

तनुमें भूषण, नेत्रोंमें अंजन, चरणोंमें महावरका रंग इनसे कुछ शोभा नहीं सजती यह तो शरीरमें कहनेहीको हैं आशय यह कि, शरीरके अंगहीमें मिलजाते हैं इनकी शोभा दिखाई नहीं देती । मीलितालंकार ॥ ५१४ ॥

मानहु विधि तनु अच्छछवि, स्वच्छराखिबेकाज।
दृग पग पोंछनको किये, भूषन पायनदाज ५१५॥

मानों शरीरकी अच्छी छवि स्वच्छ रखनेके निमित्त विधाताने दृग और पगके पोंछनेको भूषणोंको पायन दाज किया है जो फरशके आगे देहलीमें पगपोंछन होता है उसे पायनदाज कहते हैं । उत्प्रेक्षालंकार ॥ ५१५ ॥

सहज सेत पचतोरिया, पहरे अतिछवि होत ।
जलचादरके दीपज्यों, जगमगाति तनुजोत ५१६

स्वभावसेही श्वेत पचतोरिया वस्त्रकी धोती पहनकर उसकी अति शोभा होतीहै जलकी चादरके बीचमें जैसे दीपककी ज्योति जगमगातीहै तात्पर्य यह कि, जैसे पानीकी चादरके पीछे दीपक वालरखनेसे वह चमकता है इसप्रकार श्वेत साड़ीमें उसकी देह चमकतीहै । पूर्णोपमा ॥ ५१६ ॥

देखी सोनजुही फिरति, सोनजुहीसे अंग ।
दुति लपटन पट सेतमें, करत बिनौटीरंग ५१७

सौनजुही (स्वर्णयूथी) से अंगकी पीतजुही (रूपवाला अपनी कान्तिकी लपटोंसे श्वेत वस्त्र भी केशरिया रंग करते हुए फिरते देखी । वनौटी—वनयष्टि । वनोटीरंग—कपासी वा केशरियारंग । तद्गुणालंकार ॥ ५१७ ॥

वाहि लख लोयनु लगै, कौन युवतिकी जोति ।
जाके तनुकी छाँहढिग, जोन्ह छाँहसी होति५१८

उसके देखने पर फिर किस तरुणीकी ज्योति नेत्रोंमें लग सकती है कि, जिसके शरीर की छायाके निकट चाँदनी छायासी होजाती है । जोन्ह—चाँदनी । उत्प्रेक्षा ॥ ५१८ ॥

कहा कुसुम कहा कौमुदी, कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखे, आख ऊजरी होति ॥ ५१९ ॥

क्या फूल क्या चाँदनी और आरसीकी ज्योति कितनी है जिसकी उजराई देखनेसे आँख उजरी होजाती हैं । प्रतीपालंकार ॥ ५१९ ॥

कहि लहि कौन सकै दुरी, सौनजुहीमें जाय ।
तनुकी सहज सुवासना, देती जो न बताय॥५२०॥

कहो तो उस सौनजुहीमें जाकर छिपीहुईको कौन पासकता था, जो उसके शरीरकी सहज सुवासना उसे न बतादेती । उन्मीलितालंकार ॥ ५२० ॥

रहि न सक्यो कसुकरि रह्यो, वशकरि लीनो मार।
भेदि दुसार कियो हियो, तनुद्युति भेदी सार ५२१

रह नहीं सका बलकर हार गया कामदेवने अपने वशमें करहीलिया छेदकर मेरे हियेको वारपार करादिया तनुकी कान्तिने वरछी छेद दी । काव्यलिंग ॥ ५२१ ॥

कंचन तन धन वरन वर, रहो रंग मिलि रंग ।
जानीजात सुवासही, केशर लाई संग ॥ ५२२ ॥

उसके शरीरका वर्ण कंचनसे श्रेष्ठ है, उसमें रंगमें रंग मिला है इस कारण अंगमें लगी हुई केशर सुगंधहीसे जानी-जाती है, अर्थात् सुगंधके विना केसर और उसके शरीरका वर्ण एक प्रतीत होता है । उन्मीलितालंकार ॥ ५२२ ॥

है कपूर मणिमय रही, मिलति न द्युति मुकतालि।
छिन छिन खरी विचक्षणी, लहत छानि तृण आलि

मोतियोंकी लड़ी शरीरकी कान्तिमें मिलकर कपूरसी होकर मनमें रही सखी चतुरभी है, परन्तु खड़ी हुई छिन छिनमें ऊपरका तिनका लेती है; अर्थात मोतीमाला देख महामोहित होती है, चतुर सखी यह देख तृण तोड़ती है ॥ ५२३ ॥

बाल छबीली तियनमें, बैठी आप छिपाय ।

अरगटही फानूससी, परगट होत लखाय ॥५२४॥

वह बाला छबीली स्त्रियोंमें आप छिपकर बैठी परन्तु घूँघटहीमें फानूससी प्रगट होकर दीखती है।पूर्णोपमा॥५२४॥

करत मलिन आछी छबिहि, हरतु जु सहजविकास
अंगराग अंगनि लज्यो, ज्यों आरसी उसास५२५

यह तनुकी अच्छी छबिको मलीन करती है, स्वाभाविक विकास (चमक) को हरण करता है, यह अंगोंमें लगा-हुआ अंगराग ऐसा है, जैसे आरसीके स्वच्छ दर्पणपर, श्वा-सकी भाप । पूर्णोपमा ॥ ५२५ ॥

पहिर न भूषण कनकके, कहि आवत यहि हेत ।
दर्पणकेसे मोरचे, देह दिखाई देत ॥ ५२६ ॥

सोनेके भूषण मत पहने यह बात कहनेमें आती है कि, दर्पणकेसे मोरचे मेरी देह में दिखाई देते हैं, आशय यह कि, तू यह मत जाने कि, मैं तेरा गहना उतरवाती हूँ परन्तु यह तेरे शरीरके सामने मैले लगते हैं । विषमा-लंकार ॥ ५२६ ॥

लीनेहू साहस सहस, कीने यतन हजार ।
लोयन लोयन सिंधु तन, पैरि न पावत पार५२७

सहस्र साहस (हिम्मत) करके तथा सहस्र यत्न करके भी शरीररूपी शोभा समुद्र पैर कर आंख पार नहीं पाती

अर्थात् छबीलीके शोभारूप समुद्रमें पैरते हुए प्रीतमके नेत्र थकगये । छेकानुप्रास जमकालंकार ॥ ५२७ ॥

दीठि न परत समान द्युति, कनक कनकसे गात।
भूषणकर करकस लगत, परासि छिपाने जात ५२८

कनकसे गात अर्थात् सुवर्णसे शरीरपर कंचन (सुवर्ण) दृष्टि तो नहीं पड़ता कारण कि, दोनोंकी समान कांति है जब वे गहने हाथ में छूनेसे करकस लगते हैं, तब पहचाने जाते हैं । उन्मीलितालंकार ॥ ५२८ ॥

अंग अंग नग जगमगत, दीपशिखासी देह ।
दिया बढ़ायेहू रहै, बड़ो उजेरो गेह ॥ ५२९ ॥

प्यारीके सब अंग अंग हीरे मोतीसे जगमगाते हैं; दीपककी शिखाके समान सब देह है, दिया बढ़ाये परभी घरमें बड़ा उजेला रहता है । अतद्गुण पूर्णोपमा ॥ ५२९ ॥

अंग अंग प्रतिबिम्बपर, दर्पणसे सब गात ।
दुहरे तिहरे चौहरे, भूषण जानेजात ॥ ५३० ॥

अंग २ का अंग २ में प्रतिबिम्ब पड़ता है, सब अंग दर्पणसे चमकते हैं, प्रतिबिम्बके कारण ये भूषण दुहरे तिहरे चौहरे जाने जाते हैं । गुणोत्प्रेक्षा ॥ ५३० ॥

अंग अंग छबिकी लपटि, उपजति जाति अछेह।

खरी पातरीऊ तऊ, लगै भरीसी देह ॥ ५३१ ॥

प्यारीके अंग अंगसे छबिकी छटा निरन्तर उपजती जाती है, यद्यपि अधिक पतली है, परन्तु शोभासे भरीसी देह लगती है । लुप्तोत्प्रेक्षा ॥ ५३१ ॥

रंच न लखियत पहरि या, कंचनसे तनु बाल ।
कुँभिलानी जानीपरै, उर चंपका माल ॥५३२॥

बालाके सोनेसे शरीरमें पहरी हुई तनकभी नहीं जानी जाती, परन्तु हृदयपर मुरझानेसे चम्पेकी माला जानी जाती है । उन्मीलित ॥ ५३२ ॥

त्यों त्यों प्यासेई रहत, ज्यों ज्यों पियत अघाय।
सगुन सलौने रूपको, नहिं चख तृषा बुझाय५३३

ज्यों ज्यों पेट भरकर पीते हैं त्यों त्यों प्यासेही रहतेहैं गुणवान् सलौने रूपको देखकर नेत्रोंकी प्यास नहीं बुझती । विशेषोक्ति ॥ ५३३ ॥

लिखनबैठ जाकी सबहि, गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगतके, चतुर चितेरे कूर ॥५३४॥

गर्व गरूर ग्रहण करके उसके चित्रको लिखनेको बैठे जगत्के कितने चतुर चित्रकार कूढ़ अर्थात् मूर्ख न होगये । विशेषोक्ति सबहि तस्वीर ॥ ५३४ ॥

केसर केसर क्यों सकै, चंपक कितिक अनूप।
गातरूप लखिजात दुरि, जातरूपको रूप ५३५

केसर क्या बराबरी करसकती है, और चंपेकोभी क्या शोभाहै; शरीरका रंग देखकर सोनेके रूपका रूपभी छिप-जाताहै। प्रतीपालंकार ॥ ५३५ ॥

सोरठा।

तो तनु अधिक अनूप, रूप लगो सब जगतको।
मो दृग लागे रूप, दृगनि लगी अति चटपटी ५३६

तेरा शरीर शोभाकी महिमा है, सब जगत्का रूप लगा है, रूपसे मेरे नेत्र लगे हैं; इसीसे नेत्रोंको बड़ी चटपटी लगी है। आधारमाला ॥ ५३६ ॥

सुकुमारतावर्णन।

दोहा।

भूषणभार सँभारहीं, क्यों यह तनु सुकुमार।
सूधो पाँय न धर परत, माहि शोभाके भार ५३७

यह सुकुमार अंग भूषणका भार किसप्रकारसे संभाल सकेगे, कारणकि शोभाके भारसे सूधे पांय पृथ्वीमें नहीं धर सकती अथवा स्त्रीकी शोभा कुच नितम्ब हैं इनके बोझसे पृथ्वीमें सूधे पांय नहीं पड़सकते। काकोक्ति अलंकार ५३७

जनकु धरत हर हिय धरैं, नाजुक कमला बाल ।
भजत भार भयभीत है, घन चन्दन वनमाल ५३८

मानों हरि कोमल लक्ष्मी बालांको हृदयमें धारण किये हुए घना चन्दन और वनमाला धारण करते बोझसे डरते भीतहो भजते हैं । आशय यह कि, प्यारी चन्दन वनमाला देने लगी और प्रीतमको रोषकर चलता देख हृदयकी कोमलता प्रगट की ॥ ५३८ ॥

छाले परिवेके डरन, सकत न हाथ छुवाय ।
झझकति हिये गुलाबके, झवा झवावति पायँ ५३९

छाले पडनेके डरसे हाथ नहीं छुवा सकती, हृदयमें झझकती है गुलाब के झांवेसे पांव झवाती है । सम्बन्धातिशयोक्ति ॥ ५३९ ॥

मैं बरजी कैबार तू, उत कत लेत करोंट ।
पँखुरी लगे गुलाबकी, परिहैं गात खरोंट ॥ ५४० ॥

अन्तरंग सखीका वचन, मैंने तुझे कईबार निषेध किया तू उधरको करवट क्यों लेती है, गुलाबकी पँखुरी लगैंगी तो शरीरमें खुरेंट पड़ जायगी, अथवा फूल गेंद खेलते समय सखीने कहा उस ओरकी करवटसे क्यों बचाव करती है, गुलाबकी पँखुरीसे खुरेंट पड़ जायँगी । संबंधातिशयोक्ति ॥ ५४० ॥

ज्यों कर त्यों चहुँटी चलै, ज्यों चहुँटी त्यों नारि।
छविसों गतिसी लै चलति, चातुर कातनिहारि॥

जैसे हाथ चलते हैं वैसेही चुटकी चलती है, जिस भाँति चुटकी चलती हैं उसी भांति गरदन हिलती है शोभासे गति लै चलती है इस प्रकार चातुर कातनेवाली "जातिअलं०" ५४१

गर्भिणी वर्णन ।

दृग थिरको हैं अधखुले, देह थको हैं हार ।
सुरत सुखितसी देखियत, दुखित गर्भके भार ॥

नेत्र चञ्चल, अधखुले, देह थकित सुरतके अंतमें जैसे सुखीसी दीखती है, इस प्रकार यह गर्भके भारसे दुःखित है "जातिअलंकार" ॥ ५४२ ॥

गँवारी वर्णन ।

गोरी गदकारी परत, हँसत कपोलनि गाड ।
कैसी लसत गँवारि यह, सुनकिरवाकी आड ॥

गोरी गुदगुदी है, हँसने हुए गालोंमें गढे पड़ते हैं सुनकिरवाकी आड़ लगाये यह गँवारी कैसी शोभित होती है, सुनकिरवा एक कीडा है, इसको सोनपटोला कहते हैं; इसके पंख पन्नेके रंगके होते हैं "जाति अलंकार" ॥ ५४३ ॥

प्रफुलाहार हिये लसै, सनकी बेंदी भाल ।
राखत खेत सरीखरी, खरे उरोजन बाल॥५४४॥

प्रफुला (कुडा) वृक्षके फूलोंका हार छातीपर शोभा देता है माथेपर सनके फूलकी बेंदी लगाये है खरे उरोज स्तनवाली खडी खडी खेत रखाती है "श्लेषालंकार" ॥५४४॥

रतिमाहिमा ।

चमक तमक हांसीसिसक, मसक झपटलिपटानि।
ए जहँरतिसोरतिमुकति, और मुकतिअतिहानि॥

चमकना तमकना हँसी सिसकारी मसकना झपटना और लिपट जाना यह जहां रतिहै वेही रति मुक्त हैं और मुक्तिकी तौ अतिहानि है ॥ ५४५ ॥

तनकौ झँठनि स्वादली, क्यों न बात परिजाय ।
तियमुखरति आरंभकी, नहिंजूंठियेमिठाय ५४६

तनकभी झूंठसे स्वादवाली बात स्वादहीन हो जातीहै-परन्तु प्रियाके मुखसे रतिके आरंभकी झूंठी नहींही प्यारी लगतीहै। अयुक्तायुक्त ॥ ५४६ ॥

जो न युक्ति पिय मिलनकी, धूरिमुकति मुँह दीन।
ज्योंलहियेसखिसजनतौं, धरकनरकहूकीन ५४७

जो प्यारेके मिलनेकी युक्ति नहीं है तो मुक्तिके मुखमें धूरि दी और जो सजनका संग मिले तो नरकका भी डर मैंने त्याग किया "अनुज्ञा" ॥ ५४७ ॥

प्रभातवर्णन ।

कुंजभवन तज भवनको, चलिये नन्दकिशोर ।
फूलत कली गुलाबकी, चटकाहट चहुँओर ५४८॥

हे नन्दकिशोर! अब कुञ्जभवनको त्यागकर भवनको चलिये कारण कि, गुलाबकी कली फूलती है उसकी चटकाहट चारों ओर है अथवा चिडियोंकी चुचुहाटके समान कली चटकती है तात्पर्य यह कि, प्रभात होगया "काकोक्ति" ५४८

हिंडोरा वर्णन ।

होरि हिंडोरे गगनतें, परी परीसी टूटि ।
धरी धाय पियबीचही, करी खरी रसलूटि ५४९॥

हे सखी! देख यह हिंडोरेरूपी आकाशसे परीसी टूटकर ज्योंही गिरी कि, प्रीतमने दौड़कर बीचहीमें धारण किया वहां खरी रसकी लूट की, अथवा प्यारीको हृदय लगाय रस लूटकर खरी करी "उपमकरूपकसंकर" ॥ ५४९ ॥

बरजे दूनी हठ चढ़ै, ना सकुचै न सकाइ ।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि लचकि बचिजाय ॥

प्रीतमके बरजनेसे दूनी होड चढ़ती है हिंडोलेपर न सकुचती है न डरती है दोनों ओरके बोझसे कमर लचकती है अर्थात् नितम्ब और छातीके बोझसे लचक २ कर बचजाती है। "तृतीय विभावना वीक्षालंकार" हुमची—झोटालेना॥५५०॥

जलविहारवर्णन ।

ले चुभकी चलिजात तित, जित जलकेलि अधीर।
कीजत केसरनीरसों, तित तित केसरनीर ५५१॥

प्रिया जलमें गोता मारकर जिधर तिधर चलीजाती है और जलकेलिमें अधी होरही है, अपने शरीरमें लगे केशरके नीरसों जिधर तिधर केशरका नीर करती है "धर्मलुप्तालंकार" ॥ ५५१ ॥

विहँसाति सकुचतिसी हिये, कुच आँचराबिच बाँह।
भीजे पट घरको चली, न्हाय सरोवरमाँह॥५५२॥

हृदयमें सकुचती और मनमें हँसतीसी छातीके अंचलके बीच हाथ दिये सरोवरमें स्नानकर प्रिया भीजे वस्त्र घरको चली "जातिअलंकार" ॥ ५५२ ॥

मुख पखार मुडहर भिजैं, शीशसजलकर छाय।
मोरि उँचै धुन्दैनुनै, नारि सरोवर न्हाय॥५५३॥

मुख धोय जल हाथमें ले शिरको छुवाय वालोंको भिजोय मुडकर ऊँची होकर घुटनोंतक नवकर नारि सरोवरमें स्नान करतीहै "जातिअलंकार" ॥ ५५३ ॥

छिरके नाह नवोढ दृग, करि पिचकी जलजोर ।
रोचनरँग लाली भई,विय तिय लोचनकोर ५५४॥

प्रीतमने जलके जोरसे नवोढाके नेत्र छिडके, और उसीसमय दूसरी सौतके नेत्रोंके कोयोंमें गोरोचनके समान लालीहुई "असंगति" ॥ ५५४ ॥

चलतललितश्रमस्वेदकण,कलित अरुणमुखऐन ।
वनविहारथाकी तरुनि, खरे थकाये नैन ॥५५५॥

चलनेसे जो मनोहर पसीनेके कण आगये उनसे मुख-रूपी स्थान लालीकी शोभायुक्त हुआ; और जब विहारकर तरुणी थकित हुई तब उसके प्रीतमके नैन उसे देखते २ थकित होगये । "जाति०" ॥ ५५५ ॥

वढतविकासिकुचकोररुचि:कढत गौरभुजमूल ।
मनु लुटगो लोटनु चढत,चुटत ऊँचे फूल ५५६॥

प्रियवचन सखीसे,जिस समय वह ऊँचा हाथकर फूल तोड-रही अर्थात् तोडरहीथी उससमय खिलेहुए उसके कुचोंके

कोरकी कांतिको बढते, तथा गोरी भुजाकी मूल और त्रिवली देखकर मेरा मन लुटगया " विभावना " ॥ ५५६ ॥

अपने गुहिकर आपही, हिय पहिराइ लाल ।
नौलसिरी औरै चढ़ी, मौलसिरीकी माल ५५७॥

कृष्ण ने अपने हाथसे आपही गूँथकर प्यारीके हृदयमें माला पहराई उस मौलसिरीकी मालासे बालाके नई शोभा कुछ औरही चढ़ी "भेदकातिशयोक्ति छेकानुप्रास" नौल-नवल ॥ ५५७ ॥

तूज्योंउझकिझाँपतिवदन,झुकतिविहँसिसतराय।
तूत्योंगुलालमुठीझुठी,झझकावतु पियजाय५५८

तू ज्यों २ उझककर मुख ढकती है निहुडती और हँसती है त्यों त्यों गुलालकी झूठी मूठीसे प्रीतम झझकाजाताहै "पर्यायोक्ति स्वभावोक्ति" ॥ ५५८ ॥

पीठ दियेही नेक मुरि, कर घूँघटपट टारि ।
भरि गुलालकी मूठिसों, गई मूठसी मारि५५९॥

वह पीठ फेरेही नेक मुरिकर हाथसे घूंघटपट टारकर गुलालकी मूठी भरकर जादूकी मूठसी मारगई " जातिअलंकार जमक" ॥ ५५९ ॥

दियोजुपियलखिचखनिमें, खेलत फागुखियाल।
बाढ़तहू अतिपीर सुनि,काढ़त बनत गुलाल५६०

हे सखी ! उसके प्रीतमने जो फाग खेलते समय उसकी आंखोंमें गुलाल डाल दिया अतिपीर बढ़नेपर भी गुलाल काढ़ते नहीं बनता पीर होनेका कारण यह कि,प्रीतमके दर्श-नमें बाधा पड़तीहै "अनुज्ञालंकार"॥ ५६० ॥

छुटत मुठी संगहि छुटी, लोकलाज कुलचाल।
लगे दुहिन इकबारही, चलचित नैन गुलाल५६१

मूठीके छुटते साथही लोकलाज और कुलकी चाल छुटी दोनोंके चलचित्त नयन और गुलाल एक साथही लगे "स-होक्ति" ॥ ५६१ ॥

गिरे कम्पि कछु कछु रहे, कर पसीज लपटाय।
डारतमुठी गुलालकी,छुटतझुठी ह्वैजाय ॥५६२॥

हे सखी ! कुछ तो हाथ कम्पित होनेसे गिरताहै कुछ हाथ पसीज रहेहैं उनसे लपटजाताहै गुलालकी मुट्ठी डालतेहैं प-रन्तु छूटनेही झूंठी होजातीहै सात्त्विक होनेसे हाथमें कंप और पसीजना होताहै "विशेषोक्ति" ॥ ५६२ ॥

ज्यों ज्यों पटक झटक हटति,हँसतिनचावतिनैन।
त्यों त्यों निपटउदारहू,फगुआ देतनैन ॥५६३॥

प्यारी ज्यों ज्यों वस्त्रको पटकती झटकती हटकती नेत्र नचाती हँसतीहै त्यों त्यों निपट उदार प्रीतमकोभी फगुआ देते नहीं बनता, आशय यह कि, फगुआ देदेनेसे फिर यह लीला न करेगी "विशेषोक्ति" उदारता होकर भी न देना५६३

रसभिजयेदोऊदुहुनि, तउटिकरहे टरैंन।
छबिसों छिरकत प्रेमरँग, भरिपिचकारीनैन५६४॥

रससे दोनोंने दोनोंको भिजोदिया, तो भी डटरहे हैं टारेसे टलते नहीं छबिसे प्रेमका रंग छिडकते हैं और वह प्रेमका रंग नेत्रोंकी पिचकारीमें भरते हैं "रूपक" [रस—प्रेम, जल]५६४

छकि रसाल सौरभ सन, मधुर माधुरी गन्ध।
ठौर ठौर झौरत फिरत, भौंरभीर मधु अंध५६५॥

मोरकी सुगन्धसे छकके तथा मीठी माधुरी गंधमें सनकर मकरन्दके मद्यसे अंधीहुई भौंरोकी भीर ठौरठौर गूंजती फिरतीहै " जाति अलंकार" ॥ ५६५ ॥

दिशिदिशि कसुमितदेखिये, उपवन विपिनसमाज।
मनहुवियोगनकोकियो, शरपञ्जरऋतुराज ५६६

दिशा दिशाओंमें उपवन और वनका समाज फूलाहुवा है मानों वसन्तऋतुने वियोगियोंको बाणोंका पींजरा कियाहै, जैसे बहेलिये पक्षियोंको पकडनेको जाल बिछाते हैं इसप्र-

कारसे वसन्तने फूलोंका पींजरा कियाहै विरहीजनोंके नि-रुद्ध किया है " उत्प्रेक्षालंकार " ॥ ५६६ ॥

फिर घरको नूतन पथिक, चले चकित चितभागि।
फूल्यो देखि पलाशवन, समुहैसमुझिदवागि५६७

नवीन पथिक चकित चित्त होकर घरको फिरकर भाग चले, वनमें ढाका फूला देखकर सामने आग लगी हुई जानी "भ्रान्त्यालंकार" ॥ ५६७ ॥

नाहिं न ये पावक प्रबल, लुएँ चलत चहुँपास ।
मानहुविरहवसन्तके, ग्रीषमलेतउसास ॥५६८॥

यह प्रबल अग्नि नहीं है, जो चारों ओर लुएं चलती हैं मानों वसन्तके विरहमें ग्रीष्म उसास लेती है "हेतूत्प्रेक्षा" ॥ ५६८ ॥

कहलाने एकत रहत, अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवनसो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥

दुःख पाकर एकत्र रहते हैं सर्प, मोर, मृग और सिंह ग्रीष्मकी बड़ी गरमीने संसारको तपोवनसा करदिया है जैसे तपोवनमें सब जीव निर्वैर रहते हैं इसप्रकार गरमीसे व्याकु-ल हो यह सब जीव एकत्र स्थित हैं "पूर्णोपमा" दीरघ-बड़ी । दाघ-दाह । निदाघ-गरमी ॥ ५६९ ॥

बैठिरही अति सघनवन, पैठि सदनमनमाँहि ।
निरखि दुपहरी जेठकी, छाहौं चाहत छाँहि ५७०

अतिघने वनमें, अथवा मनरूपी घरमें बैठरहीं जेठकी दुपहरी देखकर छाँहभी छाँह चाहती है वृक्षके नीचे छाँह मानों दुपहरी देखकर आती है आशय यह कि, ज्येष्ठमें सघन वन या मनके भीतरही छाँह मिलसकती है "हेतूत्प्रेक्षा" ५७०

पावस घन अँधियारमें, रहो भेद नहिं आन ।
राति द्योस जान्यो परे, लखि चकई चकवान ५७१

वर्षाऋतुके घने अंधकार और रात्रिमें कुछ भेद नहीं रहा केवल चकवा चकवीकोही देखकर रात दिनका बोध होता है जब वह पृथक् हो बोलने लगते हैं तब रात जब संयुक्त होते हैं तब दिनका बोध होता है "परिसंख्यालंकार" पावस वर्णन है ॥ ५७१ ॥

तिय तरसोहें मुनि किये, करि सरसोहें नेह ।
धर परसोहें ह्वै रहे, झरबरसोहें मेह ॥ ५७२ ॥

हे तिय! तैं ने प्रेमसे सरस करके मुनिजन भी तरसत हुए करदिये यह झरसे वरसनवाले मेघ पृथ्वीको छूते हुएसे होरहे हैं ॥ ५७२ ॥

कुढँग कोप तजि रँगरली, करत युवति जग जोय।

पावस बात न गूढ यह, बूढीहू रँग होय ॥५७३॥

अरी मानवती यही कुढंगका क्रोध त्यागकर; जगमें जो रँगीली स्त्री हैं सो आनंद करती हैं पावसऋतुमें यह बात छिपी नहीं है बूढियोंकोभी रंग होता है "काव्यलिंग और श्लेष" ॥ ५७३ ॥

हठ न हठीली करसकै, इहि पावस ऋतु पाय ।
आन गांठि छुटिजाय त्यों, मानगांठि छुटिजाय॥

इस पावस ऋतुको प्राप्त करके हठीली हठ नहीं करसकती । पावस (वर्षा) को पाकर जैसे और गांठ छुटजाती है इसीप्रकार मान गाँठभी छुट जाती है "विभावनालंकार" ॥ ५७४ ॥

वेऊ चिरजीवी अमर, निधरक फिरो कहाय ।
छिन बिछुरै जिनकी नहिं न, पावस आव सिराय ॥

वेही चिरंजीवी अमर कहाकर निधडक फिरो कि, जिनकी वर्षाऋतुमें क्षणमात्रकोभी पृथक् होनेकी मनिष्ठा नहीं गई है, अर्थात् जो पियाके विना पावसमें जीवी गई वेही अमर जानो "मरणाक्षेपालंकार" ॥ ५७५ ॥

अब तज नाम उपायको, आयो सावनमास ।
खेलन रहिबो खेमसों, केम कुसुमको बास॥५७६॥

सखी अब सावन महीना आगया विरह दूर होनेके उपायका नाम त्यागदो कदम्बफूलकी गन्धसे कुशलपूर्वक रहना कोई खेल नहीं है "लोकोक्ति" शरद्वर्णन ॥ ५७६ ॥

घन घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँ दिशि राह ।
कियो सुचैनो आय जग, शरद शूर नरनाह ५७७॥

मेघोंका घेरा छूटगया प्रसन्नहो चारों दिशाओंके मार्ग चले शरद् ऋतुरूपी शूर राजाने आकर जगत्‌को सुचैन किया "रूपालंकार" ॥ ५७७ ॥

अरुणसरोरुह कर चरण, दृग खंजन मुखचंद ।
समय आय सुन्दरि शरद, काहि न करत अनंद॥

लाल कमलरूपी हाथ पैर, खञ्जन नेत्र, चन्द्रमारूप मुखसे सुन्दर शरद्‌का समय आकर किसको आनंदित नहीं करता "रूपकालंकार" ॥ ५७८ ॥

हेमन्तवर्णन ।

ज्यों ज्यों बढति विभावरी, त्यों त्यों बढत अनन्त।
ओक ओक सबलोक सुख, कोक शोक हेमन्त॥

ज्यों ज्यों रात बढती है, त्यों त्यों सबलोकमें घर घर आनंद बढते हैं हेमन्तमें चक्रवाकोंको शोक है कारण किं, बडी रातमें उनको अधिक वियोग होता है "निदर्शनालंकार" ॥ ५७९ ॥

मिलिविहरतविछुरत मरत,दम्पति अति रसलीन।
नूतन विधि हेमन्त सब,जगत जुराफा कीन५८०

दोनों स्त्री पुरुष रसमें लीन होकर विहार करते हैं वियु-क्त होतेही मृतकवत् दुःखी होते हैं जाडेने अनोखी रीतिसे सब जगत् जुराफेके समान कियाहै जुराफा एक पक्षी होताहै ईरानमें इसको गावपलंग कहते हैं पर गायकेसे,रंग चीतेकेसा, आशय यह कि, जैसा वह रंगविरंगा होताहै इसीप्रकार उसने जगत्को रंग विरंगा कियाहै अर्थात् माह पूषमें लोग अनेक प्रकारकी छींट शाल दुशाले पहरकर रंग विरंगे होजाते हैं अथवा जुराफः अफरीका देशके नूबह देशका पशुहै यह सिंहके समान चित्तल और ऊंट के समान लम्बी गर्दन-वाला होता है इनका जोड़ा बिछडेनहीं दम्पतिका मरण हो-ताहै " रूपकालंकार " ॥ ५८० ॥

कियो सबै जग कामबश, जीते सबै अजेय।
कुसुमशरहि शर धनुपकर,अगहन गहन न देय॥

जिसने सब जगत्को कामके आधीन किया, सब अजे-योंको जीतलिया अगहनका महीना उसी कामदेवके धनुष बाण हाथमें धारण करने नहीं देता अर्थात् जाडेमें उसके हाथ पैरभी सुकडते हैं " अभिप्राय विशेष " ॥ ५८१ ॥

आवत जात न जानियत, तेजहि तजि सियरान।
घरहि जमाईलौं धस्यो,खस्यो पूषदिनमान५८२

आते और जाते जाना नहीं जाता तेजको त्यागकर शी-तल होगया है घरमें जमाईकी सम घुसा हुआ पूषका दिन खसकताहै आशय यह ससुरालमें जमाईभी सकुचवश शीतल हुआ रहताहै " पूर्णोपमा " ॥ ५८२ ॥

तपनतेज तपताप तन, तूल तुलाई माह ।
शिशिर शीत क्योंहुनघटै,बिनलपटेतियबांह५८३

सूर्यके तेजसे आगके तापनेसे रूईकी रजाईसेभी माहवे महीनेमें बिना प्यारीको भुजा भरके लपटाये शिशिरका शीत किसी भांति नहीं घटता "परिसंख्या" [दो०—कहुँ तो अर्थ निषेधकर, और कहूँ ठहराय॥तेहि परिसंख्या कहत हैं, सो यहँ प्रगट लखाय] ॥ ५८३ ॥

लगतसुभगशीतलकिरण, निशदिनसुखअवगाहि
माहशशीभ्रमसूरत्यों,रहतचकोरीचाहि॥५८४ ॥

सूर्यकी किरण दिन रातके समान सुखदायक और शीत-ल विदित होतीहै दिनमेंही यह सुख विचारकर माह महीनेमें चकोरी सूरजको भ्रमसे चन्द्रमा जानकर देखरही है " भ्रांति अलंकार " ॥ ५८४ ॥

रह न सकी सब जगतमें, शिशिरशीतके पास ।
गरमिभाजगढमेंगई, तियकुचअचलमवास५८५

शीतके त्राससे गरमी इस जगत्में रह नहीं सकी इसका-
रण तियके कुचरूपी पहाडके मवासपर गढमें भाजकर
गरमी हुई अर्थात् छिपी । मवास—शरणस्थान "लुप्तोत्प्रेक्षारू-
पकालंकार" ॥ ५८५॥

रणित भृंग घंटावली, झरित दान मधुनीर ।
मन्द मन्द आवत चल्यो,कुञ्जर कुञ्ज समीर५८६

भौंरोंकी ध्वनिही मानों घंटोंका समूहहै, मधु नीररूप
जिसमें मद झरताहै इसप्रकार कुञ्जमें पवनरूपी हाथी सहज
सहज चलाआताहै " रूपकालंकार " ॥ ५८६ ॥

रुक्यो सांकरेकुञ्जमग, करत झांझ झुकरात ।
मन्द मन्द मारुत तुरंग,खुदरत आवतजात५८७॥

संकीर्ण कुञ्जमार्गमें रुककर झांझ करता- और झुकराता
है, सहज २ पवनरूपी घोडा खूंदता हुआ आताजाता है ।
सांकरे—कमचौडा । झांझ—चिरचिराहट । झुकरात—इधर उ-
धर झकोराडेना, खुदरत—खूंदना "रूपकालंकार" ॥५८७॥

चुवत स्वेद मकरन्दकण, तरु तरु तर विरमाय ।
आवतदक्षिणते चल्यो,थक्योबटोहीवाय॥५८८॥

परागका कणही पसीना चूताहै, प्रत्येक वृक्षके नीचे ठहरता हुआ थके हुए पथिकके समान वायु दक्षिणते आताहै । विरमाय—ठहरना "रूपकालंकार" ॥ ५८८ ॥

रहेरुके क्यौंहू सुचलि, आधिकराति पधारि ।
हरति ताप सब द्यौसको, उरलग यार बयारि ५८९

दिनभर रुकेरहे कहीं चलकर फिर आधीरातको पधारे यार (मित्र) रूपपवनने हृदयसे लगकर सबदिनके ताप-हरलिये हैं "छेकापह्नुति" अथवा नायकाने कहा दिनभर कहीं रहकर रात्रिके समय हृदयसे लग ताप दूर कियाहै (सखीने कहा) यार बालाने कही पवन ॥ ५८९ ॥

लपटी पुहुप पराग पट, सनी स्वेदमकरन्द ।
आवतनारिनवोढ़लों, सुखद वायगतिमन्द॥५९०

फूलोंके परागरूपी वस्त्र और फूलोंके रसरूपी पसीनेसे सनी सुख देनेवाली पवन मन्दगतिसे नवोढा स्त्रीके समान आतीहै नवोढा नई विवाहिता "रूपकालंकार" ॥ ५९० ॥

चटक न छांडत घटतहू, सज्जन नेह गँभीर ।
फीको परै न बर घटै, रँगो चोल रँग चीर ॥५९१॥

नेहमें गंभीर सज्जन धन आदिसे घटतेभी चटक नहीं छोडते बल घटनेसेभी मंजीठका रँगा कपडा फीका नहीं

पड़ता “अर्थान्तरन्यासालंकार” [दोहाः—कही जाय कछु बात जो, अर्थान्तर चलिजाय । सो अर्थान्तर न्यास है, बुध जन परत लखाय ॥ ५९१ ॥

दुर्जनवर्णन ।

नये विससिये अतिनये, दुर्जन दुसह स्वभाव ।
आंडे पारि प्राणनहरै, कांटलों लगि पांव ॥५९२॥

हे मित्र ! दुर्जन दुःसह स्वभाववालोंका विश्वास न करो चाहे अतिनम्र होते हों अथवा नये विश्वासीकी ओर मन देख यह कांटेके समान पाँवमें लगकर दांव पडनेसे प्राण-तक हरण करलेते हैं “ पूर्णोपमा ” ॥ ५९२ ॥

जेती सम्पति कृपणकी, तेती सूमत जोर ।
बढ़त जाय ज्यों ज्यों उरज-त्यों त्यों होत कठोर ॥

जितनी सम्पत्ति कृपणके पास है उतनी ही [illegible] और कुचा ज्यों २ कुच बढ़ते जाते हैं त्यों २ कठोर होते जाते हैं । “दृष्टान्तालंकार” ॥ ५९३ ॥

नीच हिये हुलसे रहैं, गहे गेंदके पोत ।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊंचे होत ॥

गेंदका गुण ग्रहण किये नीच लोग जितने मस्तक पर [illegible] हैं

ज्यों ज्यों उनके माथेमें मारै त्यों २ ऊँचे होते हैं "दृष्टान्तालंकार" कृपणके समान धन संग्रह करनेवालेकी निन्दाहै ॥ ५९४ ॥

कोटि यतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच ।
नलबल जल ऊंचे चढै, अन्त नीचको नीच ५९५

चाहै कोई कोटि यत्न करै परन्तु स्वभावमें अन्तर नहीं पडता देखो नलके बलसे जल ऊँचे चढ़ताहै परन्तु अन्तमें नीचेहीको आताहै नीच प्रकृति है (नल—फुहारेका) "दृष्टान्तालंकार" ॥ ५९५ ॥

गढरचना वरुनी अलक, चितवन भौंहकमान ।
आव बँकाईही बढै, तरुणि तुरंगम तान ॥५९६॥

गढ़की रचना, बरौनी—पलकके बाल अलक (जुल्फ) चितवन भौंह कमान तरुणी(स्त्री) घोडा और हाथी इनकी आव(प्रतिष्ठा) बांकेपनसेही बढती है, अथवा तुरंगम घोडा और तान "दीपिकालंकार" ॥ ५९६ ॥

तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रतिरंग ।
अनबूडे बूडे तरे, जे बूडे सब अंग ॥ ५९७ ॥

वीणाका शब्द, कविताईका रस, रसभरे राग रतिरंग, जो

इनमें नहीं डूबेहैं सो तो डूबे और जो इनमें सर्वांगसे डूबे हैं वेतरेहैं " विरोधाभास " ॥ ५९७ ॥

सम्पति केश सुदेश नर, नवत दुहुँनि यकबानि।
विभवसतरकुचनीचनर, नरमविभवकीहानि ॥

सम्पत्तिमें केश और भले मनुष्य नवतेहैं दोनोंकी एकही बानहै, जैसे ऐश्वर्यमें कुच और नीच नर कठोर होतेहैं ऐश्वर्यकी हानिमें नरम होतेहैं " दीपकमालालंकार " जहाँ उपमान उपमेयसे एक पद लगताहै वह दीपक माला ॥ ५९८॥

कैसे छोटे नरनसों, सरत बड़नके काम।
मढ़ो दमामो जातहै, कहिं चूहेके चाम ॥५९९॥

छोटे मनुष्योंसे बडोंके काम किसप्रकार सर सक्ते हैं कहीं चूहेके चामसे (दमामा) ऊँट पर रखनेका नगाड़ा मढा जासक्ताहै कभी नहीं " दृष्टांत " ॥ ५९९ ॥

ओछे बडे न ह्वै सकें, लगि सतरौहै बैन।
दीरघ होहि न नेकहूं, फारि निहारे नैन ॥६००॥

वृथा छोटे बडे हो सक्तेहैं, मथोंकि नयन फाडकर नहीं हो सक्ते, फाडकर देखनेसे नेत्र कुछ भी बडे नहीं होते " दृष्टान्तालंकार " ॥ ६०० ॥

इति श्रीकविवर श्रीविहारीलालकी सतसैयाके अनुसार मिश्रकृत भाषाटीकायामलंकार प्रकाशक षष्ठशतक ॥ ६ ॥

प्यासे दुपहर जेठके, थके सबै जल शोधि।
मरु धर पायमतीरही, मारू कहति पयोधि६०१

दुपहरके प्यासे जेठ महीनेमें पथिक सब ओर जल ढूंढ़ कर थकगये, और मारवारकी भूमिमें बड़े तरबूजको पाकर उसको दूधका सागर कहतेहैं, यह मारवाडमें जाकर कहाथा "प्रहर्षणालंकार" ॥ ६०१ ॥

विषम वृषादिककी तृषा, जिये मतीरानि शोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारो मूंड पयोधि॥

कठिन वृषके सूर्य (ज्येष्ठ महीने) की प्याससें जो कि, दुःसह होती है, उसमें जो मनुष्य तरबूजको ढूंढ़ जल पान करतेहैं वे कहते हैं कि, इसके सामने महा अपार गहरे जल-वाले समुद्रको शिरसे मारो अर्थात् सागरसे हमें कुछ काम नहीं "अन्योक्तिअलंकार" ॥ ६०२ ॥

अतिअगाध अति ऊथरो, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय॥६०३

नदी कूप सरोवर बावडीका अति गहरा या उथला पानी हो परन्तु उसका वही सागरहै जहां जिसकी प्यास बुझजाय, किसी पुरुषकी लग्न किसी कामिनीसे लगी. और उसकीही गुणकथा गाई इसपर सखीने कहा "अन्योक्तिअलंकार" ६०३

मीत न नीति गलीतहै, जो धरिये धन जोरि ।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि ॥ ६०४ ॥

हेमित्र ! यह नीति नहीं जो अपनी दुर्दशा बनाकर धन जोड़ रक्खे जो खाये खरचेसे बचै तो करोड़ों जोड़ो "सम्भावना" ॥ ६०४ ॥

दुसह दुराज प्रजानमें, क्यों न करै अतिद्वंद ।
अधिक अँधेरो मिलि करत, मिलि मावस रविचंद

कठिन बुरे राज्यमें प्रजाके दुःख और क्लेश क्यों न बढ़ें अमावसके दिन सूर्य चन्द्रमा एक राशिपर होकर अधिक अंधकार करतेहैं "दृष्टान्त" जयसिंहके उपराम समय कहाहै ॥ ६०५ ॥

घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन याचत जाय ।
दिये लोभ चश्मा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय॥

घर घर दीन होकर डोलनाहै प्रत्येक जनको याँचना जाता है जिसकी आंखोंमें लोभका चश्मा लगा है उसको छोटा भी बड़ा दीखताहै "रूपक" ॥ ६०६ ॥

बसै बुराई जासु तनु, ताहीको सन्मान ॥
भलो भलो कहि छोंड़िये, खोटे ग्रह जप दान ॥

जिसके शरीरमें बुराई होतीहै, उसीका सन्मान होताहै भलेको तो अच्छा कह छोड़देते हैं, परन्तु खोटे ग्रहका जप दान करते हैं "लौकिकदृष्टान्त" ॥ ६०७ ॥

कहैं यहै श्रुति स्मृतिनसों, सबै सयाने लोग ।
तीन दबावत निकसही, राजा पातिक रोग ६०८॥

वेदशास्त्र और सब सयाने लोग यह बात कहतेहैं कि, राजा पाप और रोग यह तीनों निर्बलको तुरत दबातेहैं अथवा राजा निर्बलको अबल देहको रोग दबातेहैं निकस—निर्बल "दीपकालं" ॥ ६०८ ॥

इक भीजे चहले परे, बूडे बहे हजार ।
कितने अवगुण जग करत, नैवे चढती बार ६०९

कोई भीगे कोई चहले (दलदल) में पड़े कोई डूबे और सहस्रों बहगये नई अवस्थारूपी नदीके चढते समय कितने अवगुण नहीं करती है "उल्लासालंकार ॥ ६०९ ॥

गुणी गुणी सबकोउ कहत, निगुणी गुणी न होत।
सुनो कबहुँ तरु अर्कते, अर्क समान उदोत ६१०

सब कोई गुणी२ कहतेहैं परन्तु किसीके कहनेसे निर्गुणी गुणी नहीं होता, कहीं किसीने आकके पेडसे सूरजके समान चांदना सुनाहै अर्क—सूरज और आक "न्यासालं-कार" ॥ ६१० ॥

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमतिके धंध ।
राखो मेल कपूरमें, हींग न होय सुगंध ॥६११॥

जो बुद्धि कुमतिमें फँसजातीहै तो फिर मनुष्य संगतिसे सुमति नहीं पाता चाहै कपूरमें डाल रक्खो परन्तु हींगमें सुगंध नहीं होती "अतद्गुणालंकार" ॥ ६११ ॥

सबै हँसत करतार दे, नागरताके नाँव ।
गयो गर्व गुणको सबै, बसे गमेले गाँव ॥ ६१२ ॥

नागरता चतुराईके नाम से सब ताली बजाकर हँसते है, गँवारू गांवमें निवास करनेसे गुणका गर्व सब जातारहा "उल्लासालंकार" ॥ ६१२ ॥

सोहत संग समानसों, यहै कहैं सबलोग ।
पानपीक ओठन बनै, काजर नैनन योग॥६१३॥

संग समानसे शोभित होताहै, सब लोग यही कहते है. पानकी पीक होठोंमें भली लगतीहै, और काजर नेत्रोंहीके योग्यहै, होठ लालहैं पानकी पीकभी लाल है नेत्र श्यामहैं काजरभी श्यामहै, इसकारण दोनों शोभा योग्यतासे पातेहैं " समालंकार " ॥ ६१३ ॥

जो गिरिधर महिमा मही, लहियत गा ना गान ।
प्रगटत जडता आपनी, मुकुट पाग्यन पाँव ॥

जिसको शिरपर धारण कर राजा और राव संसार अपनी बडी प्रतिष्ठा प्राप्त करतेहैं, यदि मुकुटको पाँवमें पहरे तो अपनी जडता प्रगट करतेहैं आशय यह कि, श्रेष्ठ लोक मुकटके समानहैं उनको जो शिर धरते अर्थात् आदर करतेहैं वे बडाई पातेहैं, जो निरादर करतेहैं वे अपनी मूर्खता प्रगट करते हैं " अन्योक्तिअलंकार " ॥ ६१४ ॥

अरे परखो क्यों करै, तुही विलोक विचारि ।
केहि नर केहि सर राखिये, खरे बढेपर पारि६१५

अरे अब परीक्षा कोन करै तूही विचारकर देख अच्छी प्रकार बढते किस मनुष्य और किस सरोवरने मर्यादा रक्खी है " दीपकालंकार" ॥ ६१५ ॥

बुरे बुराई जो तजैं, तौ मन खरो सकात ।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गिनैं लोग उत्पात ॥

जो बुरे बुराई त्यागदें तो उनसे मन बहुत डरता है जैसे निष्कलंक चंद्रमाको देखकर लोग उत्पात मानते हैं "दृष्टान्तालंकार" ॥ ६१६ ॥

भाँवरि अनभाँवरि भरो, करो कोटि बकवाद ।
अपनी अपनी भाँतिको, छुटै न सहज सवाद६१७

रुचिमें अरुचि करो करोड़ बकवाद करो परन्तु अपनी २

भाँतिका सहज स्वभाव नहीं छुटता आशय यह कि, सहजमें किसीकी प्रकृति नहीं छुटती अथवा सखी कृष्णसे कहती है हे लाल ! तुम्हारा पराये घरों में डोलनेका, और प्यारीका मान करनेका स्वभाव पड़ा है सो नहीं छूटनेका "विशेषोक्ति" ॥ ६१७ ॥

जाको एकौ एकहू, जग व्योसाय न कोय ॥
सो निदाघ फूले फले, आक डहडहो होय॥६१८॥

जिसको जगत्में एकभी नहीं व्योसाता, अर्थात कोई साथी नहीं, और न कुछ सामर्थ्य है वह आकका पेडभी गरमीमें फलता फूलता और हराभरा होता है अथवा जिसके वढनेसे जगत्में एकको भी लाभ न हो वह नर फूल फलेभी ऐसे हैं जैसे गरमीमें डहडहा आकका पेड़ "अन्योक्ति" ६१८

को कहिसकै बड़ेनसों, लखी बड़ीऔ भूल ।
दीने दई गुलावकी, इन डारन यह फूल ॥ ६१९ ॥

बड़ोंसे उनकी बड़ी भूल देखकरभी कौन कहसकता है विधाताने ऐसी कटीली डालोंमें यह कोमल सुगंधित गुलावके फूल लगाये हैं "अन्योक्ति" ॥ ६१९ ॥

शीतलतरु सुवासकी, घटै न महिमा मूर ।
पीनसवारे जो तजो, सोरा जान कपूर ॥६२०॥

इससे शीतलता और सुगंधकी महिमा नहीं घटसकती जो पीनस (नाकका रोग नाकसे कीडे गिरते हैं) रोगवालेने शोरा जानकर कपूर त्यागन कर दिया, इस रोगीको गंधका ज्ञान नहीं होता " अन्योक्ति " ॥ ६२० ॥

चितदै भजै चकोर ज्यों, तीजे भजै न भूँख ।
चिनगी चुगै अँगारकी, पियै कि चंदमयूख ६२१

मन देकर चकोरको देखो कि, तीसरी भाँति उसकी भूँख नहीं जाती या आगकी चिनगारी चुगती है वा चंद्रकिरण पीती है " अन्योक्ति " ॥ ६२१ ॥

चलेजाहु ह्यां को करै, हाथिनको व्यवहार ।
नहिं जानत यहि पुर बसैं, धोबी और कुम्हार ६२२

ह्यांसे चलेजाओ यहां कोई हाथियोंका व्यापार नहीं करता नहीं जानते इस पुरमें धोबी और कुम्हार रहते हैं आशय यह यहाँ निर्गुणियोंकी गाहकी है गुणियोंकी नहीं राजधानी त्यागके समय कहा होगा "अन्योक्ति" ॥ ६२२ ॥

नरकी अरु नलनीरकी, एक गति कर जोय ।
जेतो नीचो होचलै, तेतो ऊँचो होय ॥ ६२३ ॥

मनुष्यकी और नलके पानीकी एकही गति देखी गई है कि, जितना नीचा होकर चलैगा उतनाही ऊँचा होगा कहीं

जैतो ऊंचोहो चले पाठ है वहां यह अर्थ है कि, कमल और मन जल और धन बढनेसे जितना ऊँचा होगा सम्पत्ति न रहनेसे उतनाही नीचा होगा नलनीर–कमल "रूपक" ६२२

समय समय सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मनकी रुचि जेती जितै, तितनेती रुचि होय ६२४॥

समय २ पर सब सुन्दर लगते हैं रूप कुरूप कोई नहीं है मनकी जितनी रुचि जिधर होती है उधर, वह उतनीही सुन्दर विदित होती है " परिसंख्या " ॥ ६२४ ॥

गिरिते ऊँचे रसिकमन, बूडे जहां हजार।
वहै सदा पशु नरनको, प्रेमपयोधि पगार॥६२५॥

पहाडसे ऊँचे रसिकोंके हजारों मन जहां डूब गये वहीं प्रेमका समुद्र पशु मनुष्योंको पगार है जिस जलमें पांवमात्र डूबना है उसको पगार कहते हैं. आशय यह कि,मूर्ख प्रीति-रस नहीं जानते " रूपकालंकार " ॥ ६२५ ॥

संगति दोप लगै सबनि, कहते साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रूसंगतें, कुटिल बंक गति नैन ६२६

संगतिका दोष सबको लगताहै यह सब सत्य कहतेहैं, जैसा टेढी भौंहकी संगतिसे कुटिल और टेढी गतिवाले नेत्र होतेहैं "उल्लासालंकार" ॥ ६२६ ॥

मोरचन्द्रिका श्याम शिर, चढिकत करति गुमान।
लखवी पाँयनि पर लुटति, सुनियत राधा मान ॥

हे मोरचंद्रिका! श्रीकृष्णके शिरपर चढकर क्यों गुमान कर-तीहै? सुनाहै कि, राधाके मान मनाते समय तू उनके चरणोंमें पडीहै "पर्यायोक्ति" ॥ ६२७ ॥

गोधन तू हरष्यो हिये, घरि इक लेहु पुजाय।
समुझ परैगी शीशपर, परत पशुनके पाय॥६२८॥

हे गोवर्द्धन पर्वत! मनमें प्रसन्न होकर तू घरीभरको अपनी पूजा कराले, परन्तु जब अनेक पशुओंके चरण तुझपर पडैंगे तब समझ पडैगी, जो महात्माओंके अभावमें अपनेको पुजाते हैं उनपर "अन्योक्ति" ॥ ६२८ ॥

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहिकाल
अली कलीहीसों बँध्यो, आगे कौन हवाल ६२९॥

अभी न पराग है न मधुर मधु है न अभी विकास (खिला) है कलीमेंही भौंरा बिंधरहा है जाने आगे क्या हाल होगा मुग्धापर आसक्त पुरुषके प्रति "भ्रमरोक्ति" ॥ ६२९ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीत बहार।
अब अलि रही गुलाबमें, अपत कटीली डार ६३०

हे अलि ! भौंरे जिनदिनोंमें मैं फूल देखेथे वह बहार अब बीतगई, अबतो गुलाबकी पत्तेहीन कटीली डाली शेष है रू-पयौवनहीन जनके प्रति "अन्योक्ति" ॥ ६२० ॥

इहिआशा अटक्यो रहै, अलि गुलाबके मूल ।
हुइ हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ६२१॥

उत्तर—इस आशासे भौंरा गुलाबकी मूलमें अटका पड़ा है कि, फिर वसन्तऋतु होगी तो इन डालियोंपर वे फूल लगेंगे "अन्योक्ति" ॥ ६२१ ॥

सरस कुसुम डारत अलिन, झुकि झपटत लपटात
दरसत अति सुकुमार तनु, परसत मन न पत्यात

अलि रसीले फूलपर भौंरा चरण नहीं डालता झुककर झपटकर नहीं लपटाता मँडराता है अति सुकुमार शरीर दीखता है इस कारण फूलमें मन नहीं पतियाता, आशय यह कि, सुकुमारी नायिका कोमल शरीर जान करके आलिंगन नहीं करता, परन्तु आसक्तीसे पीछा छोड़ताभी नहीं "अन्योक्ति" ॥ ६२२ ॥

पट पाँखै भख काँकरै, सफर परेई संग ॥
सुखी परेवा जगतमें, एकै तुही विहंग ॥ ६२३ ॥

पंखही पट है, कंकरा आदि कंकरको भक्षण करता

सफरमें अपनी परेईको साथलिये एक परेवाही पक्षी इस जगतमें सुखी है, विदेशीको दीन देख कविवचन "परिसंख्या" ॥ ६३३ ॥

दिन दश आदर पायके, करले आप बखान ।
ज्योंलगि काकशराधपख,त्योंलगि तव सन्मान॥

जो थोडे दिनकी प्रभुतापर अभिमानमें फूल उठते हैं उनपर काकोक्ति—हे काक!दश दिनकी प्रभुताई पाकर अपने आपका कितनाही बखान करले जबतक श्राद्धका पक्ष है तबतकही तेरा सन्मान है "अन्योक्ति" ॥ ६३४ ॥

स्वारथ सुकृत न श्रमवृथा, देखि विहंग विचारि ।
बाज पराये हाथ पर, तू पक्षीहि न मारि ॥ ६३५॥

अपना स्वार्थभी नहीं, कुछ इस कार्यमें पुण्यभी नहीं, केवल वृथा श्रम है,पक्षी विचार देख इस कारण हे बाज ! पराये हाथपर बैठा हुआ (निष्प्रयोजन) तू पक्षियोंको मत मार ! बाजके प्रति उक्ति दुष्ट मनुष्यके सेवक जो अनर्थ करते हैं उनके प्रति ॥ ६३५ ॥

मरत प्यास पिंजरा पर्यो, सुआ समयके फेर ।
आदर देदे बोलियतु, बायस बलिकी बेर॥६३६॥

समयके फेरसे तोता पींजरेमें पड़ा प्यासा मरता है, और

बलिके समय (श्राद्धपक्षमें) कौआ आदर देदेकर बुलाया जाता है "शुकोक्ति" गुणीके सन्मुख निर्गुणीके आदरमें ६२६

को छूटो यहि जाल परि,मत कुरंग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझ भज्यो चहै, त्यों ज्यों उरझो जाय

हे कुरंग! इस जालमें पड़कर कोई नहीं छूटा तू मत अकु-लावै ज्यों ज्यों सुरझ कर भाजा चाहता है त्यों त्यों उलझा-जाता है अपनी तृष्णा पूर्णकर विरक्त होजायगे उनसे "कुरंगो-क्ति" है ॥ ६२७ ॥

नहिं पावस ऋतुराज यह,तज तरुवर मति भूल।
अपतभये विन पाय है,क्यों न वदल फल फूल॥

हे वृक्ष! यह वर्षाऋतु नहीं वसन्तऋतु है मतिकी भूल त्याग-न करदे अपत हुए विना नवीन फल फूल नहीं मिलेंगे अर्थात् राजसेवकके दुःखपर " तरुवरोक्ति " ॥ ६२८ ॥

अजौं तरौनाहीं रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो,बसि मुक्तनके संग॥६२९॥

भक्तवचन परमार्थ विषय, एक अंगसे श्रुतिका सेवन करने-वाला आजतक नहीं तरा परन्तु मुक्तोंके साथ बसनेसे बेसरने नाकका स्थान पाया एकअंगसे श्रुति (कान) का सेवन करनेसे (तरौना) कर्णफूल नहीं तरा पर (मुक्तन) मोतियोंके

साथ निवास करके बेसरनेभी नाक (स्वर्ग) नासिकाका बास पाया है । भक्तिपक्षमें श्रुति—वेद । बेसर—एकमात्र निर्द्वन्द्व पुरुष । नाक स्वर्ग उसका नाम तरौना वा तारनेवाला श्रुति (वेद—कान) की संगतिसे हुआ, इसका नाम मुक्तनर मोती मुक्तपुरुषोंकी संगतिसे बेसर (अनुपम) हुआ "श्लेषालंकार" ॥ ६३९ ॥

जनम जलधि पानिप अमल, तो जग आव अपार।
रहै गुणी है गर परचो, भलो न मुकताहार॥ ६४० ॥

समुद्रसे जन्म निर्मलरूप संसारमें बड़ा मोल मर्यादावान् गुणी (डोरेयुक्त) है हेमोती ! ऐसे बुद्धिमान् होकर भी दूसरोंके गले पड़ेहो इससें हीनता होगई है अर्थात् गुणियोंको किसीके गले न पडना चाहिये " अन्योक्ति " ॥ ६४० ॥

गहै न एकौ गुणगरब, हँसै सकल संसार ।
कुच उँच पद लालच रहै, गरे परेहू हार ॥ ६४१ ॥

तू मनमें एकभी गुणका अभिमान नहीं रखता इस कारण तुझको सब संसार हँसता है कुचरूपी उच्चपदके लालचसे पराये गलेमें पड़ा रहता है, हारके अर्थ मोतीहार और हीनता जैसे कोई गुणी उच्चपदके निमित्त राजाके गले पड़ै उसपर कथन है "अन्योक्ति" ॥ ६४१ ॥

मूँड़ चढायेहू रहै, परो पीठ कचभार ।
गरेपरे पहँ राखिये, तऊ हीयपर हार ॥ ६४२ ॥

मूँड चढ़नेपरही बालोंका बोझ पीठपर डालाजाता है गले पडनेपर तौभी हार हृदयपरही रक्खाजाता है ॥ ६४२ ॥

पाय तरुणि कुच उच्चपद, चिरमि ठग्यो सब गाउँ।
छुटे ठौर रहि है वहै, जुहो मोल छबि नाउँ ६४३॥

चोंटलीने तरुणीके स्तनरूपी उच्चपदको प्राप्त करके सब गाँव ठग लिया है अब ठौर छुटनेपरभी वही मोल वही छवि और वही नाम रहैगा, चिरमी—चोंटली, नीचके उच्चपद प्राप्त होनेपर यह कथन है ॥ ६४३ ॥

वे न यहां नागर बड़े, जिन आदर तो आब ।
फूल्यो अनफूल्यो भयो, गँवई गाँव गुलाब ६४४

जिनको तेरी सुघराईका आदर है वे बड़े चतुर पुरुष यहाँ नहीं हैं, हे गुलाब ! गाँवमें तू फूलाहुआ भी अनफूले हुएके समान है (मूर्खोंमें गुणीका गुण प्रकाशित नहीं होता) ॥ ६४४ ॥

करि लै सूँघि सराहिकै, रहै मबै गहि मौन ।
गंधी गंध गुलाबको, गँवई गाहक कौन ॥ ६४५ ॥

हाथमें ले सूँघ कर सराहना कर सब गँवार मौन होरहे हे गन्धी! गुलाबकी गन्धका गाँवमें कौन ग्राहक है जो मोल ले ऐसाही गुणीका मूर्खोंमें गुण प्रकाश करना है "अन्यो०" ६४५

कारि फुलेलको आचमन, मीठो कहति सराहि ।
चुपकरि रहु गंधी चतुर, अतर दिखावत काहि ६४६

ग्रामीण फुलेलका आचमन कर सराहना कर मीठा कहने लगे, हे चतुर गंधी! चुपकर, अतर किसको दिखाता है मूर्खोंके आगे चतुरकी विडम्बनामें उक्ति ॥ ६४६ ॥

कनक कनकते सौगुणी, मादकता अधिकाय ।
उहि खावे बौराय जग, यह पाये बौराय ॥६४७॥

(कनक) धतूरेसे (कनक) सोनेमें सौगुणी मादकता अधिक है वह खानेसे बौरा होता है परन्तु सुवर्णके पातेही जग बौराजाता है " व्यतिरेकालंकार " ॥ ६४७ ॥

बड़े न हूजे गुणन बिन, बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरेसों कनक, गहने गढो न जाय ॥६४८॥

गुणके विना यश बड़ाई पाकर बड़ाहोना उचित नहीं धतूरेकोभी कनक (सोना) कहते हैं परन्तु वह गहनेमें नहीं गढाजाता है " अन्तरन्यास " ॥ ६४८ ॥

हास्यरसवर्णन ।

रवि वन्दो कर जोरकै, सुनत श्यामके बैन ।
भये हँसोहे सबनिके, अति अनखोहे नैन ॥ ६४९ ॥

जिससमय गोपियें चीरहरणके समय हाथसे अंग छिपाय जलसे बाहरहुईं तब कृष्णने कहा हाथ जोड़ सूर्यको प्रणाम करो यह सुनकर बालाओंके क्रोधभरे नेत्रोंमें हँसी आगई "पर्यायालंकार" ॥ ६४९ ॥

कण देव्यो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जानि ।
रूप रहिचटे लगिलग्यो, मांगन सब जग आनि ॥

ससुरने बहूको छोटे हाथकी जानकर अन्न देना सौंपा उसके रूपके लालचसे सब जगत्के लोग आनकर मांगनेलगे "विषादालंकार" अन्न थोड़ा उठेगा इसकारण काम सौंपा सो उसके विरुद्ध अधिक उठनेलगा इससे विषाद हुआ ॥ ६५० ॥

परतिय दोष पुराण सुनि, हँस मुलकी सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्रहू, मुँह आई मुसकानि ॥ ६५१ ॥

पुराणमें परस्त्रियोंके गमनका दोष सुनकर सुखदायक बाला मुसकाकर हँसी इधर मिश्र (पुराणवक्ता) नेभी मुखआई मुसकान दबाकर रक्खी "अनुमान" ॥ ६५१ ॥

चित पितुघातक योग लखि, भयो भये सुत सोग।
फिर हुलसो जिय जोतसी, समझो जारज योग ॥

पुत्र होनेपर पितुघातक योग देखकर ज्योतिषीको पुत्रके होनेका शोक हुआ फिर जारजयोग जानकर प्रसन्नहुए आशय यह कि, यह जारसे उत्पन्नहै ऐसा होनेसे जारका घातकहै इसकारण प्रसन्न हुए "लेखालंकार ॥ ६५२ ॥

बहुधन ले अहसानके, पारो देति सराहि ।
वैदवधू हँसि भेदसों, रही नाह मुखचाहि ॥६५३॥

वैद्य बहुतसा धनले अहसानकर सराहना करके दूसरोंको पारादेताहै, परन्तु इस बातसे हँसकर वैद्यकी स्त्री भेदसे स्वामीका मुख देखकररही "अनुमानालंकार" हँसनेसे वैद्यमें नपुंसकताका अनुमान है ॥ ६५३ ॥

गोपनके अँसुअनभरी, सदा असोत अपार ।
डगर डगरने ह्वैरही, बगरबगरके बार ॥ ६५४ ॥

उद्धवजीका वचन श्रीकृष्णसे गोपियोंके आंसुओंसे भरी विनाही सोतवाली नसूखनेवाली अपारनदी ब्रजकी गली गलीमें नहीं किन्तु घर घरके बाहर होरहीहै "अत्युक्तालंकार" ॥ ६५४ ॥

श्याम सुरतिकर राधिका, तकत तरणिजा तीर ।

अँसुवनि करति तरोसके, क्षणक खरोहे नीर॥

हे कृष्ण! तुम्हारी सुरतकर राधिका यमुनाके तटको ताकती है आँसुओंसे क्षणमात्रमें तरोसके जलको खारा करदेतीहै तरोस-तलछट, "उल्लासालंकार" खरोहे-खारी अथवा गुनगना, करोहे पाठमें आंसुओंसे मिलनेसे काला॥ ६५५॥

लोये कोपे इन्द्रलों, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखेसबै, गो गोपी गोपाल ॥६५६॥

हे उद्धवजी! जिससमय कृष्णने इन्द्रका यज्ञ लोपा तब उसने कोपकर अकालप्रलय (रोपा) करनी चाही उससमय गिरि धारण करके सब गो गोपी गोपालकी रक्षा कीथी "परिकरांकुरवृत्त्यनुप्रासालंकार," [दो०—अभिप्रायके सहित जहँ,हो विशेष्य सुखदान। परिकरांकुर तेहि कहत, कविजन परमसुजान॥ ६५६॥

हों हारी कैकै हहा, पाँइन पारो प्यौर।
लेहु कहा अजहूँ किये, तेहतरेर त्यौर॥ ६५७॥

हम सब हाहाखाय समझा २ था कह कह कर हारगई तथा प्रीतमको पाँवमें डाला इससे तू क्या लेगी जो अब भी क्रोधमें चढ़ी २ आँखें कर देखती है "निशेषालि" ॥६५७॥

अनी बढ़ी उमड़त लखे, असिवाहक भटभूप।

मंगल करि मान्यो हिये, भोमुख मंगलरूप॥६५८

शत्रुका कटक बड़ा चारों ओरसे उमड़ा देखकर खड्ग-धारी वीर राजा (जयसाह) ने उसे मनमें मंगल करके माना और मुख मंगलरूप (लालवर्ण) हुआ । मंगलका लालवर्ण है " विभावना " ॥ ६५८ ॥

नाह गरज नाहर गरज, वचन सुनायो टेरि ।
फँसीफौज बिच बन्दिमें, हँसी सबनिमुखहेरि६५९

रुक्मिणीहरणका समय, मत्तसिंहकी गरजसे गरजे और सबको पुकारकर यह वचन सुनाया, विरोधियोंकी सेनाकी बांदिमें फँसी, और सब राक्षसोंका मुख देख हँसी ॥ ६५९ ॥

डिगतपानि डिगलातगिरि, लखि सब ब्रज बेहाल।
कम्प किशोरीदरशते, खरे लजाने लाल ॥६६०॥

हाथके हलनेसे गोवर्द्धनपर्वतभी हिलता है यह देखकर सब ब्रज बेहाल होगया, राधिकाको देखकर (सात्त्विकहोनेसे) कम्प हुआ इसकारण स्वयं लाल (कृष्ण) लजाये आशय यह कि, ब्रजवासी न जानें कि, राधिकाकी प्रीति है " हेतुअलंकार " ॥ ६६० ॥

प्रलयकरन बरसनलगे, जुरि जलधर इकसाथ ।
सुरपति गर्व हरो हरषि, गिरिधर गिरिधर हाथ ॥

जिससमय सब मेघ एकसाथ जुरकर वर्षा करने लगे उस गिरिधारीने प्रसन्नहो हाथपर पर्वत धारणकर इन्द्रका गर्व हरण किया "काव्यलिंग" ॥ ६६१ ॥

यों दल काढे बलखते, तैं जयसाह भुआल ।
उदर अघासुरके परे, ज्यों हरि गाय गुवाल ६६२

जिस समय जयशाहकी सेना बलखपर चढकर ऐसी घिरी कि, कहीं मार्ग दिखाई नहीं देताथा तब कौशलसे जयशाहने निकाली उसपर कहते हैं हे जयशाह ! तैंने बलखबुखारेके घेरेमेंसे इसप्रकार अपनी सेना निकाली कि, जैसे अघासुरके उदरसे कृष्णने गाय ग्वाल निकालेथे "दृष्टान्तालंकार" ६६२

मोहनि मूरति श्यामकी, अति अद्भुत गति जोय ।
बसत सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय ॥

श्यामकी मनमोहनी मूर्त्तिकी अद्भुत गति तो देखो कि, चित्तके अन्तरमें निवास करती है और छाया संसारमें दृष्टि आती है मलीन जगतमें भी बह्मनिष्टको श्यामका प्रतिबिंब दीखता है यह अद्भुतगति है अद्भुत सुनिनाग " विशेष अलंकार ॥ ६६३ ॥

या अनुरागी चित्तकी, गति समझै नहिं कोय ।
ज्यों ज्यों बूडै श्यामरंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥

इस प्रेमवाले चित्तकी गति कोई नहीं समझता है कि, ज्यों ज्यों श्यामरंगमें डूबता है त्यों त्यों निर्मल होता है अर्थात् शृंगारमय होता है "विषमालंकार संभावना" ॥६६४॥

सोरठा ।

मैं समझो निरधार, यह जग काचो काँचसों ।
एकैरूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहां ६६५

मैंने विचारकर देखलिया, यह जगत् कच्चा कांचसा है जिसमें परमात्माके एकरूपके अनन्त प्रतिबिम्ब देखे जाते हैं "पूर्णोपमा" ॥ ६६५ ॥

दो०—कोऊ कोटिक संग्रहो, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति यदुपति सदा, विपति विदारनहार ६६६

कोई करोड कोई लाख हजार द्रव्यका संग्रह करो परन्तु मेरी सम्पत्तितो विपत्ति विदारणहार सदा यदुपतिही हैं "व्यतिरेक" ॥ ६६६ ॥

यमकरि मुँहतरहरपर्यो, यह धरहर चितलाय ।
विषयतृषापरिहरिअजौं, नरहरिकेगुणगाय ६६७

यमरूपी हाथी नीचा मुख किये तले पड़ा है; यह मनमें धारण कर हरिमें चित्त लगा विषयरूपी तृष्णाको अब भी छोड़कर नृसिंहजीके गुण गानकर "परिसंख्या" ॥६६७॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एको काम ॥
मनकाचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम ॥ ६६८ ॥

जप माला छापा तिलक इनसे एक भी काम नहीं निकलता है जो मन कच्चाहै तो नाचना वृथा है राम तो साँचसे मिलते हैं अथवा जप माला छापा तिलक करनेसे पुराने क्या नये का भी काम निकलजाता है, मन कच्चे और वृथाही नाचे परन्तु राम सांचे ही मिले जप माला छापासे एक अपराधी की रक्षा हुई थी राजाकी आज्ञा थी मच्छी मत मारना एक धीमर इस आज्ञाको उल्लंघन कर मच्छी मारने लगा इधरसे राजाकी सवारी आई तब यह झट टीका लगाय जालके दानोंकी माला फेरने लगा राजा प्रणामकर चला गया " परिसंख्या " ॥ ६६८ ॥

जगत जनायो जिन सकल, सो हरि जान्यो नाहि ॥
ज्यों आंखनजगदेखियें, आंखनदेखीजाहि ६६९

जिन हरिने सब जगत् उपजाया है वे जाननेमें नहीं आते जैसे आंखसे सब जगत् देखता है परन्तु आंख नहीं देखी जाती " दृष्टांत " जनाया–उपजाया मैंनन किया॥ ६६९॥

भजन कह्यो तातें भज्यो. भज्यो न एको बार ।
दूर भजन जातें कह्यो, सो तें भज्यो गँवार॥ ६७०॥

हे मन ! भजनकरनेको कहा और तू उससे भाजा एक बारभी उसका भजन न किया, हे गँवार ! जिससे दूर भागना (विषयसे) कहा है सो तैंने भजन किया "जमक" आशय यह कि, ईश्वरको न भजा विषयको भजा ॥ ६७० ॥

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाव ।
तरि संसारपयोधिको,हरिनामें करि नाव॥६७१॥

पतवाररूपी मालापकड़ और कुछ उपाय नहीं है इसप्रकार परमात्माके नामकी नावको आश्रयकर संसारसागरके पार होजा "रूपक" ॥ ६७१ ॥

यह बिरियां नहिं औरकी,तू किरिया वह शोधि ।
पाहननावचढाय जेहि,कीन्होपारपयोधि॥६७२॥

यह समय औरका नहीं है हे मन ! तू उस पार उतारनेवाले की खोजकर जिसने पत्थरपर अपने नामसे रीछ वानरोंको चढाकर सागर पार करदिया "काव्यलिंग" ॥ ६७२ ॥

दूर भजत प्रभु पीठ दै, गुणविस्तारन काल ।
प्रगटत निर्गुण निकटरहि,चंगरंग भूपाल॥६७३॥

गुण विस्तारके समय पीठ देकर दूर भागजाते हैं निर्गुण के पासही प्रगट होते हैं, प्रभु राजा चंगके समान हैं अथवा चंग और कलिके राजा की समानता वर्णन की है स्वामीके पाससे

दूर भाजते हैं. अर्थात् डोरा और राजस बढानेके समय दूर भागते हैं. जिस समय (डोरा) गुणा बढायाजाता है चंग दूर चला जाता है, और स्वामीके निकट निर्गुणता प्रगट करतेहैं, आशय यह कि, डोरा पाकर जैसे चंग दूर जाताहै, इसीप्रकार रजोगुणकी शक्ति पानेसे राजा प्रभुको भूल जाते हैं, और जब वह अपना रजोगुणी ऐश्वर्य खैंचलेता है तब दीन दुःखी हो आठ पहर प्रभुको मनाते हैं, अथवा प्रभुके गुण विस्तार समय विषय पीठ देकर भागते हैं, तब गुणीकी खोज होती है, कोई क्षीरसागर और कोई वैकुंठमें खोज करते हैं, जब निर्गुणब्रह्म कहाजाता है तब व्यापक होनेसे निकटही भासता है आशय यह कि, रज तमकी वृद्धिमें चंगकी भांति प्रभुसे दूर होना है। "श्लेषालंकार" ॥ ६७३ ॥

लट्टूवालों प्रभुकर गहे, निर्गुणी गुण लपटाय ।
वहै गुणी करते छुटै, निर्गुणीपै ह्वैजाय ॥ ६७४ ॥

लट्टूकी भाँति जब प्रभु हाथमें पकड़ते हैं तब निर्गुणको गुण लिपटता है वही गुणी हाथसे छूटनेपर निर्गुणी होजाता है आशय यह कि, जयशाह जिस निर्गुणीको अपने पास रखते हैं वह गुणी होजाता है और छूटनेपर निर्गुणी होता है जैसे लट्टू "श्लेषालंकार पूर्णोपमा" ॥ ६७४ ॥

जात जात वित होत है, ज्यों जियमें संतोष ।

होत होत जो होय तो, होय घरैंमें मोष ॥६७५॥

धन जाते२ मनमें संतोष होता है होते२भी धन जो संतोष हो ता घडीमें वा घरही मुक्त होय "विभावना" ॥ ६७५ ॥

ब्रजवासिनको उचित धन, सो धन रुचित न कोय।
सुचित न आयो सुचितई, कहो कहांते होय ६७६

ब्रजवासियोंका उचित धन श्रीकृष्णके प्रेमरूपी धन किसीके चित्तमें न आया तो पवित्रता और स्थिरता कहांसे होगी "पर्यायोक्ति व्यावृत्तिदीपकालंकार" ॥ ६७६ ॥

मनमोहनसे मोहकरि, तू घनश्याम सँभारि ।
कुंजविहारीसों विहारि, गिरिधारी उर धारि ६७७॥

हे मानवती ! तू मानसे निर्मोही होरही है मनमोहनसे मोह (प्रेम) कर इन घनश्याम (काले मेघ) को देखकर उनको संभार वे इस समय कुंजमें स्थित हैं तू भी कुंजमें चल-कर उनके साथ विहार कर वे गिरिधारी सबके रक्षक हैं इस समय तू उनको हृदयसे लगाय धारण कर "पुनरुक्तवदाभा-सालंकार" [दो०—अर्थ लखै पुनरुक्तसों, अरु पुनरुक्त न होय। सो पुनरुक्त्याभासवत, भूषण कह सबकोय]॥६७७॥

तौलगि या मनसदनमें, हरि आवैं केहि बाट ।
निपटविकट जबलौं जुटे, खुलै न कपटकपाट६७८

तबतक इस मनरूपी घरमें भगवान् किस बाटसे आवें जबतक अतिविकट भिड़े हुए कपाटरूपी किवाड़ नहीं खु-लते "रूपक" ॥ ६७८ ॥

बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति, किये नीठ ठहराय ।
सूक्षमगतिपरब्रह्मकी, अलखलखी नहिंजाय६७९

बुद्धि अनुमान और वेदप्रमाणसे मनमें निश्चय ठहरता है परन्तु परब्रह्मकी सूक्ष्म गति होनेसे तथा अलख होनेसे लखी नहीं जाती इसीप्रकार कटिभी सूक्ष्म है होतो पर दि-खाई नहीं देती "अनुमानालंकार" ॥ ६७९ ॥

या भव पारावारको, उलँघि पार को जाय ।
तियछवि छाया ग्राहिणी, गहै बीचही आय६८०

इस जगत्रूपी संसारको उल्लंघकर पार कौन जा सकता है इसमें तियकी छवि छायाग्राहिणी है, सो बीचही आकर पकड़लेती है आशय यह कि: स्त्रीसे कोई नहीं मुक्त होता है छायाग्राहिणीने महावीरजीको घेर था "पूर्णोपमा वा दृष्टान्त" ॥ ६८० ॥

तज तीरथ हरि राधिका, तनदुति कर अनुराग ।
जेहिब्रजकेलिनि कुंजमग, पगपगहोतप्रयाग६८१

हे मन ! अनेक तीर्थोंका भ्रमण छोड़कर राधाकृष्णके शरीरकी कान्तिमें प्रेम कर, जिस ब्रजकी निकुंजके

मार्गमें (पग पगपर प्रयाग होता है,) श्याम शरीर यमुना, राधिकाकी शोभा गंगा दोनोंका अनुराग सरस्वती है " अनुज्ञा " अथवा हे तिय ! रथ त्याग यहां राधाश्यामके चरणोंमें अनुराग कर इस ब्रजमें पग पगमें प्रयाग होता है, किसीकी स्त्री रथमें बैठी यात्रा करतीथी उसके स्वामीने कहा है " काव्यलिंग " ॥ ६८१ ॥

अपने अपने मत लगे, वाद मचावत शोर ।
ज्यों त्यों सेवो सबहिको, एकै नन्दकिशोर ६८२

अपने २ मतमें लगे सब वृथा शोर मचाते हैं, जैसे तैसे सबका सेवना एकही नंदकिशोर है "परिसंख्यालंकार" ६८२

तो अनेक अवगुण भरी, चाहै याहि बलाय ।
ज्यों पति सम्पति हू बिना, यदुपति राखैजाय ६८३

सम्पत्ति अनेक अवगुण भरी है, इसकी चाहना हमारी बलाय करती है, जो कृष्णचंद्र रक्खैं तो सम्पत्ति विनाभी पत रहती है " संभावना " ॥ ६८३ ॥

दीरघ साँस न लेइ दुख, सुखसाईं मति भूल ।
दई दई कत करत है, दई दई सुकबूल ॥६८४॥

दुःखसे दीर्घश्वास मत ले सुखके स्वरूप भगवान्को मत भूलै दैव दैव क्यों करता है जो दैवने दिया है सो अंगीकार कर " जमकालंकार " ॥ ६८४ ॥

दियो सुशीश चढाय ले, आछी भाँति अहेरि ।
जापै चाहत सुखलयो, ताके दुखहि नफेरि ६८५

भगवान्ने जो दिया है सो शिरचढाले अच्छी भाँति देख अंगीकार कर जिससे सुख लियाचाहता है उसके दिये दुःखको मतफेरे " विचित्र " ॥ ६८५ ॥

नीकीदई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
मनो तज्यो तारन विरह, बारिक वारण तारि६८६

हे ईश ! आपने अच्छी आनाकानीकी मेरी पुकार सुन-करभी आनाकानी की, एकबार हाथीको तारकर मानो तारने-का यशही छोड़ दिया ॥ ६८६ ॥

कौनभांति रहिहै विरद, अब देखनी मुरारि ।
बीधे मोसों आनिकै, गीधे गीधहि तारि ॥६८७॥

अब तुम्हारा यश किसप्रकारसे रहेगा सो देखना है हे मुरारि ! आप मुझसे आकर अटके हो और पहलेही गिद्धको तारकर अर्थात् मुझको किस प्रकारसे तार सकतेहो "काव्य-लिंग " ॥ ६८७ ॥

बंधुभये का दीनके, को तारो रघुराय ।
तूठे तूठे फिरतहो, झूंठ विरद कहाय ॥ ६८८ ॥

हे भगवन् ! आप किस दीनके बंधु हुए आपने किसको तारा जो प्रसन्नहो लोकोंसे झूंठा यश कहलानेको फिरतेहो ॥

थोरेई गुण रीझते, बिसराई वह बानि ।
तुमहू कान्ह मनो भये, आजकालके दानि६८९

पहले तो थोड़ेसेही गुणसे रीझ जाते थे अब वह बान बिसरादी, हे कृष्ण! तुम भी मानों आजकाल्हके ढोलीनटके समान दानी हुए जैसे नट ढोल बजाकर करतब दिखाता है इस प्रकार दो एक कार्यकर आपने बिरद विख्यात किया " उत्प्रेक्षा " ॥ ६८९ ॥

कबको टेरत दीनरत, होत न श्याम सहाय ।
तुमहू लागी जगत गुरु, जगनायक जगवाय६९०

हे श्याम ! मैं कबका दीनहो टेरता हूं आप मेरे सहाय नहीं होते हे जगद्गुरु ! आपको भी जगत्की हवा लगी है " उत्प्रेक्षा " ॥ ६९० ॥

ज्यों हैहों त्यों होंहुंगो, हों हरि अपनी चाल ।
हठ नकरो अतिकठिन है, मोतारिबो गोपाल६९१

जो हूंगा सो होऊंगा, हे कृष्ण ! मैं अपनी रीतिपरहूं तुम हठ न करो मैं महापापी हूँ मेरा तारना अतिकठिन है " उत्प्रेक्षा " ॥ ६९१ ॥

करौ कुवत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरलहिय, बसत त्रिभंगीलाल ६१२

चाहे सबसंसार मेरी निंदाकरे परन्तु मैं कुटिलता न छोडूंगा, हृदय सीधा न करूंगा, हे दीनदयालु ! आप सीधा हृदय करनेसे दुःखीहोगे कारण कि, मेरे हृदयमें त्रिभंगी-छबिकी आपकी मूर्त्ति निवास करती है चरण कटि ग्रीवा तिरछी कर खडे होनेको त्रिभंगी कहते हैं सूधे हृदयमें टेढा आपसे न रहा जायगा " काव्यलिंग " ॥ ६१२ ॥

मोहिं तुम्हें बाढी बहस, को जीतै यदुराज ।
अपने २ बिरदकी, दुहूँ निबाहनि लाज ॥६१३॥

हे यदुराज ! मुझमें और तुममें बहस पडी है देखें कौन जीते अपने २ बिरदकी दोनों लाज निबाहेंगे अर्थात् मैं तो अपना पतितपन नहीं छोडूंगा और आप अपना पतित पावनपन नहीं छोडेंगे " विरोधाभास " ॥ ६१३ ॥

समै पलट पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल ।
भो अकरुण करुणा करौ, यह कपूत कलिकाल ॥

समयके पलटनेसे स्वभावभी पलटता है अपनी चाल

कौन नहीं छोडदेता हे दयालु ! आप भी करुणारहितहुए अब दया करो यह कलिकाल महाकपूत है "सहोक्ति" ६९४

तौवलिये भलिए वनी, नागर नन्दकिशोर ।
जो तुम नीकेकै लखो, मो करनीकी ओर ६९५

म बलिहारी जाऊं हे नागरनन्दकिशोर! तो तौ भली ही बनजाय जो आप भली प्रकारसे मेरी करनीकी ओर देखा " सम्भावना लंकार " ॥ ६९५ ॥

हरि कीजत तुमसों यहै, बिनती बार हजार ।
जेहितेहि भांति डर्‍योरहौं, पर्‍योरहौं दरबार ६९६

हे हरि ! आपसे वारंवार यही विनती है कि, जिस तिस भाँतिसे डरता हुआ आपके दरबारमें पडा रहूं " लोकोक्ति अलंकार " ॥ ६९६ ॥

निजकरनी सकुचौंहिकत, सकुचावत इहिचाल ।
मोहूसे अतिविमुखसों, सन्मुख होत गुपाल६९७॥

एक तो मैं अपनी करनीसे सकुचाता हूं फिर आप इसरीतिसे क्यौं सकुचातेहो कि, आप मुझसे अति विमुखके भी सन्मुख होते हो हे कृष्ण ! " परिकरांकुर " ॥ ६९७ ॥

कीजे चित सोई तरों, जेहि पतितनके साथ ।
मेरे गुण अवगुण गणनि,गिनो न गोपीनाथ६९८॥

हे कृष्ण ! चित्तमें वही कीजिये जिससे मैं पतितोंके साथ तरजाऊं हे गोपीनाथ!आप मेरे गुण अवगुणकी गिन्ती नकरो " दीपकालंकार " ॥ ६९८ ॥

प्रगटभये द्विजराजकुल,सुबस बसे ब्रजआय ।
मेरे हरो कलेश सब,केशव केशव राय ॥६९९॥

चन्द्रवंशमें प्रगट होकर ब्रजमें आनकर बसे केशवभगवान् और केशवराय (पिता) मेरे सब क्लेश हरो, पिताके पक्षमें, जो ब्राह्मणश्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए और ब्रजमें आनकर बसे " श्लेषालंकार " ॥ ६९९ ॥

सोरठा ।

मोहूदीजे मोष, ज्यों अनेक अधमन दियो ।
जो बांधे ही तोष, तौ बांधो अपने गुणन॥७००॥

हे भगवन्, मुझे भी आप मुक्ति दीजिये जैसे अनेक अधमोंको दी है और जो बांधनेसे सन्तोष हो तो अपने गुणोंसे बांधो "श्लेषालंकार" ॥ ७०० ॥

चलतपाय निगुणी गुणी, धन मणि मोतीमाल ।
भेंटभये जयशाहसों, भाग चाहियत भाल ७०१॥

गुणी निर्गुणीभी जिसको पाकर धनमणि मोतीमाला लेकर जाते हैं जयशाहसे भेंट होनेपर माथेमें भाग्य चाहिये " काकोक्ति " ॥ ७०१ ॥

रहति न रण जयशाहमुख, लखि लाखनकी फौज।
जाचि निराखर हू चलै, लैलाखनकी मौज ७०२॥

लाखों मनुष्योंकी सेनाभी युद्धमें जयशाहका मुख देख स्थित नहीं रहसकती और मांगकर निरक्षरभी जिनसे लाखों लेजाते हैं ॥ ७०२ ॥

प्रतिबिम्बित जयशाहद्युति, दीपति दर्पणधाम ।
सब जग जीतनको कियो, कायव्यूह मनु काम ॥

शीशमहलमें राजा जयशाहकी परछाहीं दीतिको प्राप्त होती है मानों सब जगत् जीतनेको कामदेवने अपनी काया-का व्यूह (समूह) रचा है " उत्प्रेक्षा लंकार " ॥ ७०३ ॥

घर घर हिन्दुनि तुरुकिनी, देत अशीश सराह ।
पतिनु राखि चादर चुरी, पति राखी जयशाह ७०४

घर घरमें हिन्दुओंकी और तुरकोंकी स्त्री सराहना कर अशीश देती हैं कि, हमारे पतियोंकी रक्षाकर जय शाहने हमारी चूरी और चादर रक्खी वैधव्यमें हिन्दुओंमें चूरी और तुरकोंमें चादरका त्याग होता है "उत्प्रेक्षालंकार" ॥ ७०४॥

सामा सेन सयानकी, सबै शाहके साथ ।
बाहुबली जयशाहजू, फते तिहारे हाथ ॥७०५॥

सामान सेना चातुरीयुक्त सब दिल्लीपतिकी शाहके साथ है परन्तु हे बाहुबली जयशाहजी ! फतह (जीत) आपहीके हाथ है 'तुम जहाँ जातेहो जीततेहो' (दक्षिणका युद्ध है) ॥ ७०५ ॥

हुकम पाय जयशाहको, हरिराधिकाप्रसाद ।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥७०६॥

जयशाहका हुक्म पाकर हरि राधिकाके प्रसादसे बिहारी-दासने अनेक संवादभरी सतसई निर्माण करी ॥ ७०६ ॥

सम्वतग्रहशशिजलधिक्षिति, छठतिथिवासरचंद।
चैतमास पख कृष्णमें, पूरण आनँदकंद ॥७०७॥

सम्वत् १७१९ में चैतकृष्ण छठ चंद्रवारके दिन यह सतसई पूर्णहुई ग्रह ९ शशि १ जलधि ७ क्षिति १ अंकोंकी वामगतिसे १७१९ सम्वत हुए ॥ ७०७ ॥

गुरुजन दूजे व्याहको, नितउठि कहत रिसाय ।
पतिकी पति राखत वधू, आप न बाँझकहाय७०८

घरके बड़ेलोग नित उठकर दूसरा व्याह करनेको रिसाकर कहते हैं परन्तु बहू आप बांझ कहाकरभी पतिकी पत रखती है पतिका दोष कथन नहीं करती "जातिअलंकार" ॥ ७०८ ॥

अरे हंस या नगरमें, जैयो आप बिचारि ।
कागनसों जिन प्रीतिकर,कोयलदईबिडारि ७०९

अरे हंस इस नगरमें विचारकर जाना कारण कि, यहांके निवासियोंने कौएसे प्रीति करके कोयलोंको निकाल दियाहै "अन्योक्ति" ॥ ७०९ ॥

यदपि पुराने बक तऊ, सरवर निपट कुचाल ।
नये भये तो कहाभये,ये मनहरन मराल॥७१०॥

यद्यपि पुराना बगलाहै तोभी सरोवरपर उसकी अतिही कुचाल है नयेहुए तो क्या हुआ यह हंस मन हरनेवाले हैं ॥ ७१० ॥

सखी सिखावत मानविधि,सैनन बरजति बाल ।
हरुवेकहि मो हिय वसत,सदा विहारीलाल७११॥

सखी मान सिखाती है परन्तु बाला सैनोंमें बरजती है हौलेसे कहती है मेरे हृदयमें विहारीलाल सदा बसते हैं "प्रेमालंकार" ॥ ७११ ॥

ठाढी मंदिरमें लखै, मोहन दुति सुकुमार ।
तनु थाके हू नाथके, चखचित चतुर निहार ७१२

वह सुकुमारी मंदिरमें खड़ी मोहनकी कोमल कान्ति देखती है शरीर थकनेपरभी उसके नेत्र और चित्त नहीं थके देखेही जाती है "विशेषोक्ति लंकार" ॥ ७१२ ॥

शशिवदनी मोसों कहत, सो यह साँची बात ।
नैननलिन यह रावरे, न्याय निरखि नैजात ७१३

आप मुझसे चंद्रमुखी कहते हो सो यह बात सत्य है इसी कारण यह आपके कमलनेत्र मुझे देखकर झुक जाते हैं अर्थात् चंद्रको देख कमल सकुचाता है "हेतूत्प्रेक्षा" ॥ ७१३ ॥

जा मृग नैनीके सदा, वेणी परसति पाय ।
तायदेखमनतीरथनि, विकटनि जाय बलाय ७१४

जिस मृगलोचनीके सदा वेणी (शिरकी चोटी वा त्रिवेनी) पांव परसती है उसका दर्शन कर फिर त्रिकट तीर्थोंमें विचरनेको बलाय जाय. (राधिका वर्णन) ॥ ७१४ ॥

तजत हठावन हठ परो, शठमति आठों जाम ।
भयो वाम वा वामको, रहत कामबेकाम ॥ ७१५ ॥

यह शठमति आठों प्रहर हठ नहीं छोडता हठ ग्रहण किये है कामदेव निष्प्रयोजन सदाही उससे प्रतिकूल रहता है वाम—बायाँ प्रतिकूल ॥ ७१५ ॥

पायल पाँय लगीरहै, लगे अमोलक लाल ।
भोडरहूकी भासिहै, बेंदी भामिनि भाल ॥७१६॥

अमूल्य लाल लगनेसेभी पायल पांवसेही लगी रहती है चाहे अभ्रककीभी है परन्तु बेंदी बालाके माथेपरही शोभित होतीहै ऊँचे ऊँचेही हैं नीचे नीचेही हैं "अन्योक्ति" ॥७१६॥

भो यह ऐसोई समय, जहां सुखद दुख देत ।
चैतचाँदकी चाँदनी, डारत किये अचेत ॥७१७॥

अब यह ऐसाही समय आगया सुखदाई वस्तु दुःखदाई होगई चैतके महीनेकी चाँदनी अचेत किये डालती है "व्याघात अलंकार" ॥ ७१७ ॥

यदपि नाहिं नाहीं वही, वदन लगी जकजाति ।
तदपि भौंह हांसी भरिनु, हाँसीये ठहराति ७१८॥

यद्यपि मुखसे नहीं नहीं वही जक लगीजाती है तौभी हँसीसे भरीहुई भौंहोंमें 'हाँ' सीही ठहरती है । अर्थात् मुखमें नहीं भौंहोंमें हाँ है "विरोधाभास" ॥ ७१८ ॥

मुख सूखे मिस रोष मुख, कहत रुखौहै बैन ।
रूखे कैसे होत यह, नेह चीकने नैन ॥ ७१९ ॥

रोषके बहानेसे मुख रूखा किया मुखसे रूखी बातें कहती हैं परन्तु यह नेहसे चिकने नेत्र रूखे कैसे होसकते हैं "काव्यलिंगालंकार" ॥ ७१९ ॥

वाम तमासे करिरही, विवश वारुणी सेइ ।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति, झुकि २ हँसि २ देइ

वारुणी पान करके वाम विवश हो तमासे कररही है कभी खिजाती हँसती फिर झुकती खिजल २ कर हँस देती है "जातिअलंकार" ॥ ७२० ॥

लग्यो सुमन ह्वैहै सुफल, आतप दोष निवारि ।
वारी वारी आपनी, सींचि सुहृदता वारि ॥ ७२१ ॥

सुमन (फूल) लगा है अच्छा फल लगेगा गर्मीके दोषसे बचाकर अपना अच्छा मन लगाके फलभी अच्छा लगेगा

क्रोधरूपी गरमीसे बचाव कर हे वारी ! अपनी प्रेमरूपी वाड़ीको सुहृदतारूप जलसे सींच मान मत कर "श्लेषालंकार" ॥ ७२१ ॥

ललन चलन सुनि चुपरही,बोली आप न ईठ ।
राख्यो गहि गाढे गरो,मनो गलगलीदीठ॥७२२॥

लालनका चलना सुनकर चुपरही स्वयं प्रीतमसे न बोली मानो आंसूभरी दृष्टिने कसकर प्यारीका गला पकड़ रक्खा है " उत्प्रेक्षालंकार " ॥ ७२२ ॥

सकै सताय न तम विरह,निशदिन सरस सनेह ।
वहै रहै लागी दृगनि,दीपशिखासी देह ॥ ७२३ ॥

रात दिन सनेहके कारण विरह रूपी तम नहीं सतासकता कारण कि, रात दिन नेत्रोंसे उसकी देह दीपकी शिखासी लगी रहती है " विशेषोक्ति " ॥ ७२३ ॥

इति श्री पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासहित विहारीलालकी सतसई सम्पूर्ण ।

प्रशंसा ।

दोहा ।

सतसैयाके दोहरा, ज्यों नावकको तीर ।
देखतके छोटे लगैं, बेधैं सकल शरीर ॥ १ ॥

सतसईके दोहे नावकके से तीर हैं देखनेके छोटे लगते हैं परन्तु सब शरीर बेधते हैं ॥ १ ॥

ब्रजभाषा बरणी कविन, बहुविधि बुद्धिविलास ।
सबकी भूषण सतसई, करी विहारीदास ॥ २ ॥

यद्यपि कवियोंने अपनी बुद्धिके अनुसार अनेकविधि ब्रजभाषाका वर्णन कियाहै परन्तु विहारीदासने सबकी भूषण सतसई निर्माण की है ॥ २ ॥

करे सातसै दोहरा, सुकवि बिहारीदास ।
सबकोऊ तिनको पढ़ै, गुणै गुणेश विलास ॥ ३ ॥

सुकवि बिहारीदासने सातसौ दोहे निर्माण किये इनके पढ़नेसे गुणनकरनेसे सुख होता है ॥ ३ ॥

दोहा—राधामाधव पदकमल, प्रेमसहित शिरनाय ।
भाषामें सतसईको, टीका लिखो बनाय ॥ १ ॥
अलंकार अरु अर्थ सब, भाव सहित दरशाय ।
कियो सरसटीका सरल, बुधजन लख सुखपाय ॥ २ ॥
वेद बाण अरु अंक विधु, सम्वत पौष सुमास ।
तेरस तिथि बुधवारको, पूरण किय सुखरास ॥ ३ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको तहां, बुध ज्वालापरसाद ॥ ४ ॥
तिन हितसों टीका कियो, राधाकृष्ण मनाय ।
ब्रजविलास रचना कछू, भाषाम दरशाय ॥ ५ ॥
जगत विदित श्रीसेठजी, खेमराज सुखदान ।
तिनको सौंपी स्वत्वसह, याहि न छापे आन ॥ ६ ॥
कृष्णराधिका ध्यान धर, भज श्रीराधे श्याम ।
इनहीके परसादसे, सिद्ध होत सब काम ॥ ७ ॥

इति ।

पुस्तक मिलनेका पता—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस खेतवाड़ी—बंबई.